

On the Auspicious Occasion
of
D. A. V. College Centenary Celebration

We announce to publish
FOUNDERS OF SCIENCES IN ANCIENT INDIA
IN TWO VOLUME

By. Dr Svami Satya Prakash Sarasvati

Contents

- I Atharvan—The First Discoverer of Fire
- II Fire leads to Mechanical Devices
- III Dīrghatamas—The Discoverer of the Vedic Era
- IV Gārgya—The First Enumerator of Constellations
- V Bharadvāja Presides over the First Medicinal Plants Symposium
- VI Ātreya Punarvasu and His Academy of Medicine
- VII Suśruta—The Father of Surgery
- VIII Kaṇāda—The First Expounder of Realism, Law of Causation and Atomic Theory
- IX Medhātithi—First to Extend Numerals to Billions
- X Āryabhata lays Foundations of Algebra
- XI Lagadha—The First to Rationalize Astronomy
- XII Lātadeva & Sṛiṣeṇa Introduce Greek Astronomy to India
- XIII Baudhāyana—The First Great Geometer

The volume is printed on sunlit offset paper by Offset process.

Full cloth bound, Pages 700, Price Rs. 500/-

Send Your Order with draft to

GOVINDRAM HASANAND

4408, Nai Sarak, Delhi-110006

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३६, अंक ३] वार्षिक मूल्य : दस रुपये [अक्टूबर १९८६

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

मरा हुआ धर्म कहीं तुम्हें न मर दे !

—प्रो० रामविचार एम० ए०, दयानन्द कॉलेज, हिसार

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥

(यजु० ३१।१६)

जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) श्रेष्ठतम कर्मों के द्वारा पूजनीय परमेश्वर की (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे श्रेष्ठ कर्म आदि (धर्माणि) धारणारूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमानः) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वं) इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) साधनों को किये हुए (देवाः) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्) सब दुःख-रहित मुक्तिमुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं ।

मन्त्र में कहा गया है कि जो विद्वान् श्रेष्ठ कर्मों द्वारा ईश्वर की पूजा करते हैं, वे महत्त्व से युक्त हुए विद्वान् पूर्वविद्वानों की भाँति मोक्ष को प्राप्त होते हैं । जिन श्रेष्ठ कर्मों को वे अपनाने हैं वे धारणारूप धर्म अनादि रूप से मुख्य हैं । वे श्रेष्ठ कर्म क्या हैं, इनकी चर्चा आगे की जाएगी । सबसे पहले हम धारणारूप धर्म की व्याख्या कर रहे हैं ।

मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, इसपर सभी सहमत हैं । परन्तु मनुष्य की मनुष्यता इसी बात पर निर्भर है कि वह सोच-समझकर कर्म करे । महर्षि यास्क ने इसी बात को कहा है—

मनुष्यो मननात्, मत्वा कर्माणि सीव्यति ।

मनुष्य मनन करने से ही मनुष्य कहलाता है । जो सोच-समझकर कर्म करता है, वही मनुष्य है ।

यह जड़ सृष्टि सामान्य रूप से प्राणियों के और विशेष रूप से मनुष्यों के उपयोग के लिए बनाई गई है । जड़ जगत् स्वयं अपना उपभोग नहीं कर सकता । इसके उपभोग के लिए चेतन की आवश्यकता होती है ।

यह जड़ सृष्टि किन्हीं नियमों के आधार पर चल रही है। सूर्य का निश्चित समय पर उदय होना, उसका किसी निश्चित समय पर अस्त होना, ऋतुओं का क्रमशः आगमन, सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों की गति, शरीर-रचना और सृष्टि के सूक्ष्म रहस्य—ये सब इस सत्य की ओर संकेत करते हैं कि सृष्टि का एक-एक कण नियमों में बँधा हुआ है।

जैसे जड़-जगत् नियमों में बँधकर चल रहा है, वैसे ही मनुष्य-समाज के सुचारु रूप से चलने के लिए कुछ नियमों की आवश्यकता होती है। मनुष्य-समाज जिन नियमों के आधार पर चलता है, उन नियमों के संग्रह का नाम धर्म है। नैतिकता के नियमों के बिना मनुष्य-समाज कदापि नहीं चल सकता। नैतिकता के ये नियम ही धर्म कहलाते हैं।

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं—रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और व्यक्तिगत न्याय। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को इन छः वस्तुओं की आवश्यकता रहती है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य को नैतिकता-सम्बन्धी नियमों के पालन की आवश्यकता रहती है। नैतिकता के इन नियमों का पालन ही धर्म का आचरण कहलाता है।

जिस प्रकार प्राणों के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, जिस प्रकार सूर्य प्रकाश और उष्णता के बिना निरर्थक है, जिस प्रकार चाँदनी के बिना चाँद का कोई महत्त्व नहीं, जिस प्रकार पौष्टिक तत्त्व के बिना अन्न का कोई महत्त्व नहीं, जिस प्रकार उष्णता के बिना अग्नि का कोई अस्तित्व नहीं, जिस प्रकार शीतलता के बिना जल का कोई महत्त्व नहीं, उसी प्रकार धर्म (नैतिक आचरण) के बिना मनुष्य का भी कोई महत्त्व नहीं।

धर्म आचरण की वस्तु है। धर्म केवल प्रवचन और वाद-विवाद का विषय नहीं। केवल तर्क-वितर्क में उलझे रहना धार्मिक होने का लक्षण नहीं है। धार्मिक होने का प्रमाण यही है कि व्यक्ति का धर्म पर कितना आचरण है। व्यक्ति जितना-जितना धर्म पर आचरण करता है, उतना-उतना ही वह धार्मिक बनता है। 'धृ धारणे' से धर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है धारण करना। महर्षि वेदव्यास ने कहा है—

धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

धारण करने से ही धर्म को धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण करने के गुण से युक्त होता है, निश्चय से वही धर्म है। तैत्तिरीयोपनिषद् के ऋषि के अनुसार शिक्षा-प्राप्ति के उपरान्त गुरुकुल के स्नातक को विदा करते समय जो उपदेश दिये जाते थे, उनमें एक उपदेश यह भी होता था—

धर्मं चर !

अर्थात् तू धर्म का आचरण कर ! इसमें धर्म का आचरण करने की बात कही गई है, धर्म पर तर्क-वितर्क और वाद-विवाद करने की बात नहीं कही गई ।

मनुष्य एक पशु है । समाज में रहने के कारण वह एक सामाजिक पशु है । विद्या को ग्रहण करके वह बौद्धिक पशु बन जाता है । विद्या की प्राप्ति मनुष्यता का लक्षण नहीं है । जब वह नैतिकता को धारण करता है, तब वह मनुष्य कहलाता है । निर्व्यसनता नैतिकता को चमकाती है । आध्यात्मिकता सोने पर सुहागे का काम करती है । नैतिकता + निर्व्यसनता + आध्यात्मिकता का समन्वय ही वास्तव में मनुष्य को मनुष्य बनाता है ।

धर्म मनुष्य में शिवत्व की स्थापना करना चाहता है । वह मनुष्य को पशुता के धरातल से ऊपर उठाकर मानवता की ओर ले जाता है और मानवता से ऊपर उठाकर उसे देवत्व की ओर ले जाता है । यदि कोई व्यक्ति धार्मिक होने का दावा करता है और मनुष्यता और देवत्व उसके जीवन में नहीं आ पाते, तो समझिए कि वह धर्म का आचरण न करके धर्म का केवल आडम्बर कर रहा है ।

वैदिक साहित्य में धर्म की बहुत महिमा बताई गई है । मनु महाराज ने लिखा है—

नामुम हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः ।

न पुत्रदारं न ज्ञातिधर्मंस्तिष्ठति केवलः ॥

—(मनु० ४ : २३६)

परलोक में माता, पिता, पुत्र, पत्नी और गोती (एक ही वंश का) मनुष्य की कोई सहायता नहीं करते । वहाँ पर केवल धर्म ही मनुष्य की सहायता करता है ।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।

एकोऽनुमुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

—(मनु० ४ : २४०)

जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है । अकेला ही पुण्य को भोगता है और अकेला ही पाप को भोगता है ।

एक एव सुहृद्भर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति ॥

—(मनु० ८ : १७)

एक ही मित्र धर्म है जो मरने पर भी आत्मा के पीछे जाता है; अन्य सब पदार्थ शरीर के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाते हैं ।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।

विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मंस्तमनुगच्छति ॥

—(मनु० ४ : २४१)

सम्बन्धी मृतक के शरीर को लकड़ी और ढेले के समान भूमि पर फैंककर विमुख होकर चले जाते हैं, परन्तु आत्मा के साथ केवल धर्म ही जाता है ।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हितकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥

—(मनु० ४ : २४३)

जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता है, जिसका धर्म के अनुष्ठान से पाप दूर हो गया है, उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है उस परम-दर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है ।

धर्म के आचरण पर मनु महाराज ने बहुत बल दिया है—

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥

—(मनु० ४ : १७०)

जो अधर्मी, अनृतभाषी, अपवित्र व अनुचित रीत्योपार्जक तथा हिंसक है, वह इस लोक में सुख नहीं पाता ।

न सोदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मो निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥

—(मनु० ४ : १७१)

धर्माचरण में कष्ट भेलकर भी अधर्म की इच्छा न करे, क्योंकि अधार्मिकों की धन-सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट होती देखी जाती है ।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥

—(मनु० ४ : १७२)

संसार में अधर्म शीघ्र ही फल नहीं देता, जैसे पृथिवी बीज बोने पर तुरन्त फल नहीं देती । वह अधर्म धीरे-धीरे कर्त्ता की जड़ों तक को काट देता है ।

अधर्मैर्णधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

—(मनु० ४ : १७४)

अधर्मी प्रथम तो अधर्म के कारण उन्नत होता है और कल्याण-ही-कल्याण पाता है, तदनन्तर शत्रु विजयी होता है और समूल नष्ट हो जाता है ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

—(मनु० ८ : १५)

मारा हुआ धर्म मनुष्य का नाश करता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है । इसलिए धर्म का नाश नहीं करना चाहिए ताकि कहीं मरा हुआ धर्म तुम्हें ही न मार दे !

वषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।

वषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥

—(मनु० ८ : १६)

ऐश्वर्यवान् धर्मं सुखों की वर्षा करनेवाला होता है। जो कोई उसका लोप करता है, देव उसको नीच कहते हैं, इसलिए मनुष्य को धर्म का लोप नहीं करना चाहिए।

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चलं जीवितयौवनम् ।

चलाचले हि संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥

धन, प्राण, जीवन और यौवन—ये सब चलायमान हैं। इस चलायमान संसार में केवल एक धर्म ही निश्चल है।

प्रश्न यह उठता है कि जिस धर्म की इतनी महिमा कही गई है, वह धर्म क्या है? इस सन्दर्भ में मनु महाराज का श्लोक ध्यान देने योग्य है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

—(मनु० ६ : ६२)

धीरज, हानि पहुँचानेवाले से प्रतिकार न लेना, मन को विषयों से रोकना, चोरी न करना, मन को राग-द्वेष से परे रखना, इन्द्रियों को बुरे कामों से बचना, मादक द्रव्य का सेवन न करके बुद्धि को पवित्र रखना, ज्ञान की प्राप्ति, सत्य बोलना और क्रोध न करना—ये धर्म के दस लक्षण हैं।

मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताकर नैतिकता की कुछ बातें बताई हैं। ये दस लक्षण नैतिकता की ओर संकेत करते हैं। इन दस लक्षणों के अतिरिक्त लोभ का त्याग, मोह का वशीकार, अहंकार की निवृत्ति, नम्रता, सरलता (निष्कपटता), दोष की स्वीकृति, क्षमा-याचना, छोटों के प्रति स्नेह-भाव, बड़ों के प्रति श्रद्धा-भाव, स्वार्थ-त्याग, परोपकार, मानवमात्र से प्रेम, ईर्ष्या की निवृत्ति, द्वेष का अभाव, अहिंसा, अन्याय का विरोध, कृतज्ञता, कर्तव्य-निष्ठा, ईश्वरार्पण-भाव, गुण-ग्राहकता, सेवा-भाव, माता-पिता-आचार्य और अतिथि की सेवा, दानशीलता, प्रतिकार-भावना का अभाव, रुष्ट व्यक्ति का रोष-निवारण और वाक्-संयम इत्यादि नैतिकता के सभी गुण धर्म के अन्तर्गत आते हैं। व्यक्ति जितना-जितना इन नियमों को अपनाता है, उतना-उतना ही धार्मिक बनता जाता है।

इन्हीं गुणों को महर्षि दयानन्द जी ने तीर्थ कहकर पुकारा है, क्योंकि 'जना येस्तरन्ति तानि तीर्थानि' अर्थात् मनुष्य जिनके कारण तरे, उनका नाम तीर्थ है। जलस्थल तरानेवाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं।

धर्म की एक सार्वभौम परिभाषा महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में दी है। वह इस प्रकार है—

धृत्यां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥

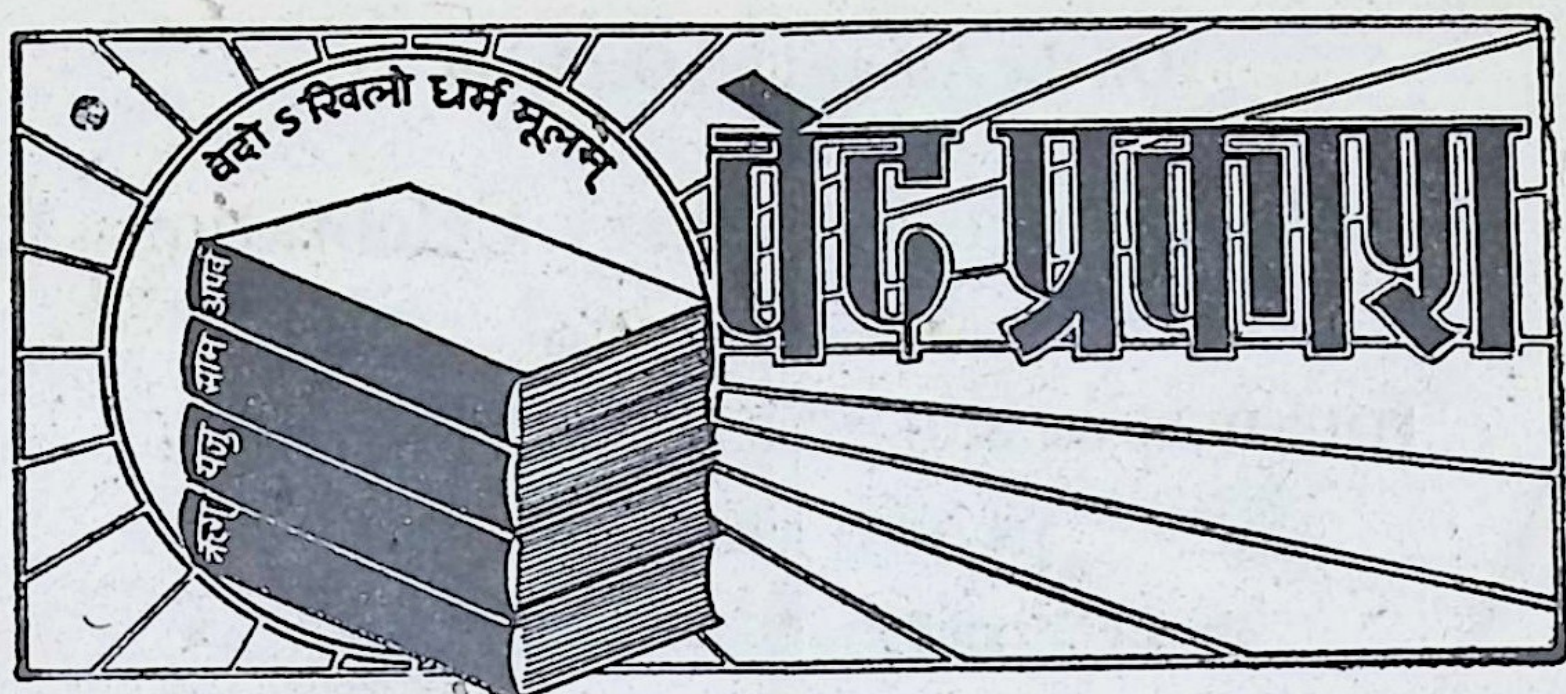
धर्म के सर्वस्व (मर्म) को सुनो और सुनकर धारण करो । जो व्यवहार अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरों के लिए मत करो !

धर्म की जो परिभाषाएँ भारतीय ऋषियों ने दी हैं, उनसे संसार के किसी भी बुद्धिमान् को विरोध नहीं हो सकता । संसार का कोई भी व्यक्ति चाहे किसी सम्प्रदाय का हो और किसी भी देश का हो, उसे नैतिकता के इन नियमों से कभी इन्कार नहीं हो सकता । यह नैतिकता ही सार्वभौम, सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वत्रिक धर्म है । इसी धर्म के सहारे मनुष्य-समाज चल रहा है । इन नियमों का पालन किये बिना मनुष्य-समाज नहीं चल सकता । इन नियमों के पालन न करने से ही मनुष्य-जगत् में विकार आते हैं । यदि ये नियम सुन्दर रीति से चलते रहते हैं, तो मानव-समाज में शान्ति, आनन्द और सद्भाव का निवास होता है । जहाँ ये नियम काम नहीं करते वहाँ दुःख, कलह और क्लेश का वातावरण बना रहता है ।

नैतिकता के ये नियम सभी मत-मतान्तरों को स्वीकार हैं । साम्यवादी (कम्युनिस्ट) जो संस्थाबद्ध मतों के घोर विरोधी हैं, उनको भी इन नियमों से कोई विरोध नहीं, क्योंकि नैतिकता ही मानव-धर्म है । जैसे मनुष्य को (१) रोटी, (२) कपड़ा, (३) मकान, (४) चिकित्सा, (५) शिक्षा और (६) न्याय की आवश्यकता रहती है, वैसे ही मनुष्य को इस नैतिकतारूपी धर्म की आवश्यकता रहती है । जिस प्रकार मनुष्य उपर्युक्त मूलभूत आवश्यकताओं के बिना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता, वैसे ही नैतिकता को अपनाए बिना वह जीवन व्यतीत नहीं कर सकता ।

धर्म का सार कोरी नैतिकता ही नहीं है । धर्म के साथ आध्यात्मिकता का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । केवल नैतिकता का आचरण व्यक्ति की एकांगी उन्नति का कारण है । जब ईश्वरोपासना साथ जुड़ती है, तब मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है । ईश्वरोपासना के ढंग भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट पद्धति योगाभ्यास है जिसमें भाषा का कोई भेद नहीं । चित्तवृत्तियों को एकाग्र करते हुए आत्मा और परमात्मा का प्रत्यक्षीकरण करने का मार्ग ही एक निर्विवाद मार्ग है, जिसपर सारे संसार के मनुष्यों को एक केन्द्र-बिन्दु पर इकट्ठा किया जा सकता है । नैतिकता और योग-निष्ठा—यही दो केन्द्र-बिन्दु हैं जहाँ पर संसार के मनुष्यों को केन्द्रित किया जा सकता है ।

प्रत्येक मत के चार पक्ष होते हैं—दार्शनिक, कर्मकाण्ड, नैतिकता एवं निर्व्यसनता, और उपासना-पद्धति । नैतिकता प्रत्येक मत को स्वीकार है । इसका अर्थ यह हुआ कि नैतिकता सारे मतों का सामान्य कारक है । इस सामान्य कारक से साम्यवादी (कम्युनिस्ट) को भी इन्कार नहीं है । जिसने नैतिकता को स्वीकार



विदेश में वैदिक साहित्य

गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन के संचालक विजयकुमार जी के सुपुत्र अनिलकुमार आर्य वैदिक साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए ३८वें अन्तर्राष्ट्रीय फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेला ८६ में भाग लेने के लिए २६ सितम्बर को (जर्मनी) रवाना ।

फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) में प्रतिवर्ष पुस्तक-मेला होता है। इस वर्ष के पुस्तक-मेले का विषय ही 'भारत—बदलाव में निरन्तरता' है। फ्रैंकफर्ट पुस्तक-मेले में किसी देश को विषय बनाकर पहली बार चर्चा होगी। इस बार भारत की संस्कृति-साहित्य और कला पर विशेष चर्चा होगी।



भारत का प्रतिनिधित्व करने भारत के एक सौ प्रकाशक इसमें भाग लेने गये हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय मेले में दुनिया-भर से सात हजार प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता भाग ले रहे हैं।

ऐसे महत्वपूर्ण पुस्तक मेले में आर्य वैदिक साहित्य के प्रदर्शन के लिए फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

आशा की जाती है कि इस मेले से वैदिक साहित्य के विश्व में प्रचार-प्रसार को विशेष बल मिलेगा।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

कर लिया, मानो उसने धर्म की अन्तरात्मा के आगे सिर झुका दिया, भले ही वह संस्थावद्ध मत हिन्दू मत, इस्लाम, ईसाई मत, यहूदी मत, बौद्ध मत पर विश्वास न रखता हो। यही वह केन्द्रबिन्दु है जिसपर धरती के सभी मनुष्य खड़े किये जा सकते हैं। यही वह केन्द्रबिन्दु है जिसपर सभी मत-मतान्तर एक धरातल पर लाए जा सकते हैं। ऊपर जो प्रत्येक मत के चार पक्ष गिनाए गए हैं, उनमें दार्शनिक दृष्टि, कर्मकाण्डपरकता और निर्व्यसनता पर भी विवाद है एवं उपासना-पद्धति के भी अनेक ढंग हैं, परन्तु नैतिकता पर कोई विवाद नहीं है। यह नैतिकता ही धर्म की अन्तरात्मा है, यही सब मत-मतान्तरों का सार है, यही सार्वभौम धर्म है।

‘सत्यार्थप्रकाश’ के ग्यारहवें समुल्लास के अन्त में महर्षि दयानन्द ने आप्त विद्वान् और जिज्ञासु में एक वार्तालाप उपस्थित किया है। आप्त विद्वान् ने जिज्ञासु को परामर्श दिया कि वह इन-इन मत-मतान्तरवालों के पास जाए और उनसे पूछे। वे जिन बातों पर सहमत हों वह धर्म, और जिन बातों पर वे सहमत न हों वह अधर्म। वह जिज्ञासु इन मत-मतान्तरवालों के पास जाता है और उनसे पूछता है—‘सत्य भाषण में धर्म है वा मिथ्या में?’ सब एकस्वर होकर बोले कि ‘सत्य भाषण में धर्म और असत्य भाषण में अधर्म है।’ वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म और अविद्या-ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, पर-हानि करने आदि कर्मों में? सबने एकमत होके कहा कि विद्यादि ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म।

उक्त वार्तालाप से यह सिद्ध होता है कि जिज्ञासु के प्रश्न पर मत-मतान्तर-वालों ने जिन बातों पर सहमति प्रकट की है, वे सब बातें नैतिकता से सम्बन्धित हैं। यही नैतिकता ही मानव-धर्म है।

यही वे कर्म हैं जिनके लिए वेद-मन्त्र ने कहा है कि देव श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा परमेश्वर का पूजन करते हैं और यही कर्म अनादि रूप से मुख्य हैं। नैतिकता के यही नियम ईश्वर की भक्ति के प्रमुख साधन हैं। यही कर्म मुख्य हैं और अनादि रूप से मुख्य हैं। जीवात्माओं के साथ नैतिकता के इन नियमों का शाश्वत सम्बन्ध है। इन्हीं के कारण विद्वान् महत्त्व से युक्त होते हैं और मोक्ष को प्राप्त होते हैं—

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।

धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥

—(मनु० ४ : २४५)

अतः मनुष्य को अपनी सहायता के लिए धर्म का सदा संचय करना चाहिए, क्योंकि धर्म की ही सहायता से मनुष्य दुस्तर दुःख-सागर को तैर सकता है।

इस प्रसंग में एक छोटी-सी कथा का वर्णन करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यह कथा इस प्रसंग को समझने में सहायक सिद्ध होगी। एक बहुत बड़े विद्वान् के

जीवन की घटना है। एक बार उसे नौका-विहार की इच्छा हुई। वह नदी के किनारे गया। उसने एक नाविक से प्रार्थना की कि वह उसे नौका-विहार कराए। नाविक उसे नौका में बिठाकर नौका-विहार कराने लगा। शीतल और मन्द समीर के भोंके चल रहे थे। विद्वान् आनन्द-मग्न था। उसने मस्ती में भरकर नाविक से पूछा—‘क्या तुमने दर्शन-शास्त्र पढ़ा है?’ नाविक ने कहा—‘नहीं। मैं भला दर्शन-शास्त्र को क्या जानूँ? मैं एक अनपढ़ निर्धन मल्लाह हूँ। नौका चलाकर रोटी कमाता हूँ।’ विद्वान् ने व्यंग्यात्मक दृष्टि से कहा—‘निश्चय जान कि तेरी आयु का $\frac{1}{4}$ भाग व्यर्थ गया।’ नौका नदी की अथाह जल-राशि में बह रही थी। कुछ समय के पश्चात् विद्वान् ने फिर मल्लाह से पूछा—‘क्या तुमने राजनीति-शास्त्र पढ़ा?’ नाविक ने उत्तर दिया—‘मैंने तो राजनीति-शास्त्र नहीं पढ़ा।’ विद्वान् ने कहा—‘निश्चय जान, तेरी आयु का $\frac{2}{4}$ भाग व्यर्थ गया।’ कुछ समय के पश्चात् फिर विद्वान् ने पूछा—‘तूने अर्थ-शास्त्र पढ़ा है?’ नाविक बोला—‘मैंने तो अर्थ-शास्त्र नहीं पढ़ा।’ विद्वान् ने उसका उपहास उड़ाते हुए कहा—‘निश्चय जान, तेरी आयु का $\frac{3}{4}$ भाग व्यर्थ गया।’ दैव-योग से कुछ ही क्षणों में नदी का पानी बढ़ने लगा और नाव हिचकोले खाने लगी। नाविक ने बहुत हाथ-पैर मारे, परन्तु नाव नियन्त्रण से बाहर हो गई। ऐसी स्थिति में नाविक ने विद्वान् से पूछा—‘क्यों श्रीमन्! नदी में तैरने की कला जानते हो?’ विद्वान् ने कहा—‘मैं तो इस कला को नहीं जानता।’ इसपर नाविक ने कहा—‘मेरी तो $\frac{3}{4}$ भाग आयु ही व्यर्थ गई, मगर समझ लो कि आपकी सारी आयु ही व्यर्थ गई, क्योंकि तैरना आपको आता नहीं और कोरे शास्त्रों का ज्ञान आपको डूबने से बचा नहीं सकता।’

इसी प्रकार भव-सागर को पार करने की कला है—धर्म का आचरण। जो पूर्वोक्त नैतिकता के नियमों पर आचरण करेगा, वह निश्चित रूप से भव-सागर को पार कर जाएगा।

पर बात केवल नैतिकता तक ही सीमित नहीं रह जाती, बात इससे आगे भी चलती है। जब मनुष्य रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याओं से निश्चिन्तता प्राप्त करता है तो वह सोचता है कि इस संसार का बनानेवाला कौन है? क्या यह संसार अपने-आप बना है अथवा इसका कोई बनानेवाला है? यदि बनानेवाला है तो वह एक है अथवा दो? यदि वह है तो उसका क्या स्वरूप है? वह निराकार है अथवा साकार रूप भी धारण करता है? वह सर्वशक्तिमान् है तो किस रूप में? वह न्यायकारी है तो दयालु किस रूप में? क्या इस संसार का कोई धारक है अथवा नहीं? क्या इस सृष्टि का कोई संहारक है अथवा नहीं? क्या कोई हमारे कर्मों का द्रष्टा है कि नहीं? क्या हमारे कर्मों का कोई फल-प्रदाता है कि नहीं? यदि वह है तो उसने मनुष्यमात्र को कोई सन्देश-उपदेश दिया है कि नहीं? यदि दिया है तो वर्तमान धर्म-ग्रन्थों में से वह कौन-सा धर्म-

ग्रन्थ है ? क्या शरीर में किसी आत्म-तत्त्व का निवास है कि नहीं ? शरीर में वर्तमान चेतना क्या स्थूल भूतों का परिणाम है अथवा आत्म-तत्त्वों के कारण है ? यदि आत्म-तत्त्व है तो उसका क्या स्वरूप है ? क्या आत्मा कर्मफल को प्राप्त करता है ? क्या वर्तमान जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् कोई जीवन है कि नहीं ? क्या स्वर्ग, नरक अथवा मोक्ष नाम की कोई वस्तु है कि नहीं ?

ये वे प्रश्न हैं जिनको लेकर किसी भी मत-मतान्तर का दार्शनिक पक्ष बनता है। यह दार्शनिक पक्ष बहुत विवादग्रस्त है। संसार के मत-मतान्तर इन प्रश्नों का एक-जैसा उत्तर नहीं देते। वे इन प्रश्नों के भिन्न-भिन्न उत्तर देते हैं। कोई भी जिज्ञासु इन उत्तरों को सुनकर चकित हो जाता है। वह निश्चय ही नहीं कर पाता कि किसे स्वीकार किया जाए अथवा और किसे अस्वीकार। यह दार्शनिक पक्ष विवादग्रस्त पक्ष है।

दार्शनिक पक्ष के पश्चात् आता है संस्कार-पक्ष। वैदिक ऋषियों ने मनुष्य-जीवन के परिष्कार के लिए सोलह संस्कारों का विधान किया है। ये संस्कार किसी भी मत-मतान्तर के यहाँ नहीं पाए जाते। सोलह संस्कारों की बात छोड़िए, दो मुख्य संस्कारों को लीजिए—विवाह-संस्कार और अन्त्येष्टि-संस्कार। विवाह किस रीति से हो अथवा मरने के पश्चात् पार्थिव अवशेष का क्या बने ? ये दो संस्कार ही बहुत विवादग्रस्त हैं। कोई कहता है कि मृतक शरीर को भूमि में गाड़ना चाहिए, कोई कहता है जलाना चाहिए तो कोई कहता है उसे जंगली पशुओं के आगे डालना चाहिए। सभी मत-मतान्तरों के संस्कार-पक्ष में मतभेद है।

मत-मतान्तरों का एक पक्ष निर्व्यसनता भी है। कुछ मत मांसाहार को वैध समझते हैं तो कुछ उसको अवैध। इसपर भी मतभेद है।

अब रहा उपासना-पद्धति का पक्ष। एक मत कहता है कि नमाज द्वारा ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। दूसरा कहता है कि प्रार्थना (प्रेयर) द्वारा। तीसरा कहता है कि सन्ध्योपासना और योगाभ्यास द्वारा भक्ति करनी चाहिए। यह उपासना-पद्धति का पक्ष भी बहुत विवादग्रस्त है।

प्रश्न यह है कि इतनी विवादग्रस्तता में वह कौन-सा केन्द्रबिन्दु है कि जिस पर सब मत-मतान्तरों को इकट्ठा किया जा सके ? निश्चित रूप से दार्शनिक-पक्ष, संस्कार-पक्ष, निर्व्यसनता और उपासना-पद्धति में कोई भी ऐसा केन्द्र-बिन्दु नहीं है जिसपर इन सब मतों को इकट्ठा किया जा सके। जबतक मनुष्य के कन्धों पर सिर रहेगा, सिर में मस्तिष्क रहेगा और मस्तिष्क में चिन्तन-शक्ति रहेगी, तब तक यह विभिन्नता और मत-भेद समाप्त नहीं हो सकते।

हाँ, एक बात का कहना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि यदि सब मत-मतान्तरों के दार्शनिक पक्ष, संस्कार-पक्ष, निर्व्यसनता और उपासना-पद्धति को तुलना की जाय और निष्पक्ष विवेचन किया जाय तो व्यक्ति वैदिक धर्म के

दार्शनिक पक्ष, संस्कार-पक्ष, निर्व्यसनता और उपासना-पद्धति को ही श्रेष्ठतम समझेगा। धर्म के जिज्ञासुओं के लिए यह खुला निमन्त्रण है कि वे सब मतों की तुलना करें और परिणाम पर पहुँचें। विस्तार-भय से इस तुलना का यहाँ पर अवकाश नहीं है।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, धर्म का लक्ष्य मनुष्य का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान है। धर्म बहुत ऊँची वस्तु है, परन्तु धर्म का संसार में बहुत अपयश फैला है। इस अपयश के कई कारण हैं। 'साम्प्रदायिकता' धर्म के अपयश का एक बहुत बड़ा कारण है। मत-मतान्तरों के विद्वानों का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए दूसरों के सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन तो किसी सीमा तक उचित है, परन्तु एकमतस्थ विद्वानों का दूसरों के प्रति घृणा का प्रसार करना धर्म का आचरण नहीं, अपितु साम्प्रदायिकता को अपनाना है। क्या धर्म दूसरों के प्रति घृणा करना सिखाता है?—कदापि नहीं। धर्म तो प्रेम और सौहार्द का उपदेश देता है। धर्म तो मानव को मानव के साथ जोड़ता है, भेद-भाव उत्पन्न नहीं करता। वर्ण-व्यवस्था के विकृत रूप को अपनाकर सवर्ण हिन्दुओं ने शूद्रों पर जो अत्याचार किए हैं, वे भी अधर्म के कारण ही किए हैं। धर्म ऐसे सामाजिक अन्याय की आज्ञा नहीं देता। दूसरों को काफ़िर और दुष्ट कहकर उनकी हत्या या मार-पीट का विधान करना साम्प्रदायिकता का ही एक दूषित और कलुषित रूप है। जब धर्म मनुष्य को मनुष्य से घृणा करना ही नहीं सिखाता तो वह दूसरे मनुष्यों की हत्या का विधान कैसे करेगा? इसी साम्प्रदायिकता की आड़ लेकर एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय की हत्या करते हैं। इसी साम्प्रदायिकता के कारण शिया और सुन्नी, रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट आपस में लड़ते हैं और एक-दूसरे की हत्या करते हैं। ऐसी स्थिति में साम्प्रदायिकता की आड़ में धर्म बदनाम होता है। इसी साम्प्रदायिकता ने ही धर्म के उज्ज्वल स्वरूप को कलंकित किया है। इसी प्रकार एक सम्प्रदायवाले दूसरे सम्प्रदायवाले की सम्पत्ति को लूटते हैं। दूसरे मतवालों की सम्पत्ति की लूट-पाट भी धर्म की दृष्टि से चोरी और डाका ही है। क्या धर्म चोरी और डाके का समर्थन कर सकता है? और यदि कोई धर्म चोरी-डाके का समर्थन करता है तो वह धर्म नहीं है।

एक मतवाले दूसरे मतवालों की लड़कियों के साथ व्यभिचार करते हैं और इसे भी पुण्य समझते हैं। क्या यह धर्म है? यदि यह धर्म है तो अधर्म क्या है? धर्म के नाम पर यह भी एक कलंक है।

अपने मत के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए एक मत के अनुयायी दूसरे मतवालों को तलवार के बल से अपने सम्प्रदाय में प्रवेश कराते हैं। इस अत्याचार का भी धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके पीछे भी साम्प्रदायिक दल-विस्तार की भावना ही काम करती है। मुसलमानों ने सम्प्रदाय-परिवर्तन के लिए

पारसियों और हिन्दुओं पर जो अत्याचार किए हैं, वे इस्लाम के नाम पर बहुत बड़ा धब्बा हैं।

जब कोई मत-प्रवर्तक संसार में आता है तो उसके सम्पर्क में जो व्यक्ति आते हैं वे उसके गुणों से प्रभावित होकर अपने आचरण को बदलते हैं, अपना नैतिक उत्थान करते हैं, अपनी बुराइयों को मोड़कर अच्छाइयों को स्वीकार करते हैं। उनका यही आचरण मानो धर्म को अपनाना है। इन व्यक्तियों की सन्तान का आचरण उन-जैसा नहीं होता, क्योंकि उन्होंने (कुछ को छोड़कर) तो उस महा-पुरुष के सम्पर्क में आकर अपने आचरण को बदला नहीं होता, अतः वे एक दल का रूप धारण कर लेते हैं। फिर उन सम्प्रदायवालों की यह इच्छा होती है कि उनके सिद्धान्तों के माननेवालों की संख्या बढ़े। इसके लिए वे लोभ और भय का आश्रय लेकर लोगों को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करते हैं। इस प्रक्रिया के अपनाने से धर्म की अन्तरात्मा समाप्त हो जाती है और केवल दल-विस्तार की भावना रह जाती है। यह प्रवृत्ति गुणवत्ता को कम कर देती है और संख्या-वृद्धि को प्रोत्साहन देती है। इसी के कारण धर्म की अन्तरात्मा को बहुत हानि पहुँचती है और धर्म केवल ढोल की पोल बनकर रह जाता है। इस दल-विस्तार की प्रवृत्ति के कारण धर्म बदनाम हुआ, यद्यपि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं, दोष तो दल-विस्तार की भावना में है।

धार्मिक होने की घोषणा करना और धर्म के अनुरूप आचरण न करना भी धर्म की बदनामी का कारण बना है। केवल दार्शनिक सिद्धान्तों की रट लगाए जाना, केवल संस्कार-पक्ष की व्याख्या करते जाना और व्यवहार एवं आचरण को न सुधारना—यह मानो धर्म को बदनाम करना है। एक व्यक्ति नमाज, प्रार्थना (प्रेयर), यज्ञ और पूजा-पाठ तो मन लगाकर करता है, परन्तु दुकान पर बैठकर कम तोलता है, झूठ बोलता है, दूसरों के साथ छल-कपट करता है तो वह धर्म को बदनाम कर रहा है, क्योंकि उसका आचरण धर्म के अनुकूल नहीं। इसी सन्दर्भ में उर्दू के एक कवि ने कहा है—

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुन्किर हुई है दुनिया।

कि जिस खुदा के हैं ऐसे बन्दे, वो कोई अच्छा खुदा नहीं है ॥

यदि कोई व्यक्ति धार्मिक होने का ढोंग रचता है और धर्म का आचरण नहीं करता, तो यह उसका अपना दोष है, धर्म का तो कोई दोष नहीं।

धर्म की बदनामी का एक कारण पौराणिकता भी है। प्रत्येक मत में कई ऊलजलूल, तर्कहीन, बुद्धि-शून्य, सृष्टि-विज्ञान के विरुद्ध ऐसी कथाएँ जोड़ी हुई हैं जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का एक लक्षण 'ज्ञान' बताया गया है, जबकि ये सब कहानियाँ बुद्धि और ज्ञान के विपरीत हैं। कर्ण का कानों से उत्पन्न होना, हनुमान जी का सूरज को मुँह में डाल लेना, गंगा का शिवजी की

जटाओं से निकलना, गुरु नानकदेव का मक्के को घुमा देना, मूसा के डंडे का बहुत बड़ा साँप बन जाना, उनके डंडे से नील नदी का सूख जाना, तूर पहाड़ पर जाकर उनका ईश्वर से बातें करना, इब्राहीम का नमरूद की आग में कूदना और उस आग का बाग बन जाना, ईसा का बिना वाप के उत्पन्न होना, ईसा का मुर्दों को जीवित कर देना, मुहम्मद का चाँद के दो टुकड़े कर देना, महावीर स्वामी का अंगूठे को दवाना और शेषनाग का हिल जाना, महावीर का साँप को काटना और महावीर के शरीर से दूध का निकलना और सर्प का चर्वे स्वर्ग में जाना इत्यादि-इत्यादि कई बुद्धि और तर्क से रहित घटनाएँ सभी मत-मतान्तरों में पाई जाती हैं। ज्यों-ज्यों विज्ञान और बुद्धिवाद का प्रकाश हो रहा है त्यों-त्यों बुद्धिवादी को धर्म उपहास की वस्तु प्रतीत होने लगा है। परन्तु इसमें धर्म का कोई दोष नहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञान और अविद्या के नाम पर ही धर्म को बदनाम होना पड़ा है।

स्वार्थपूर्ति के कारण भी धर्म बदनाम हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के लोग दक्षिणी अमेरिका की जंगली जातियों पर शासन करना चाहते थे। वे इसका कोई उपाय सोचने लगे। उन्होंने उनके मुखिया को वाइवल देकर कहा कि इसकी आज्ञा पर चलो। मुखिया ने पुस्तक को कान से लगाकर कहा कि यह तो कुछ भी नहीं कहती और उसे नीचे फेंक दिया। वस, उन लोगों को बहाना मिल गया और वे जंगली जातियों पर अत्याचार करने लगे। औरंगजेब ने भी दारा शिकोह को मारने के लिए यह बहाना बनाया कि दारा इस्लाम का शत्रु है। इस प्रकार स्वार्थ की पूर्ति के कारण धर्म बदनाम हो गया।

ईसाई पादरियों ने यूरोप में धर्म के नाम पर लोगों का बहुत शोषण किया। लोगों से रुपये लेकर उन्हें अभिषंसात्मक पत्र देने लगे, ताकि न्याय के दिन ये पत्र उनकी मुक्ति के काम आएँ। धर्म के नाम पर जो शोषण किया जाता रहा, इसका विरोध मार्टिन लूथर और तदनन्तर साम्यवादियों ने किया। इस ठगी के कारण धर्म बदनाम हुआ, वस्तुतः इसमें धर्म का कोई भी दोष नहीं था, धर्म तो वैसे ही बदनाम हो गया।

धर्म के नाम पर ही भारत में शूद्रों पर घोर अत्याचार किये गए। उन्हें सामाजिक और धार्मिक न्याय से वंचित रखा गया। वर्ण-व्यवस्था की रचना तो आजीविका-भेद के कारण की गई थी, परन्तु उसका दुरुपयोग यह हुआ कि शूद्रों से ही घृणा की जाने लगी। यह धर्म का दुरुपयोग था। धर्म तो वास्तव में मनुष्यों से प्रेम करना सिखाता है, न कि घृणा। स्त्रियों को अपने से निकृष्ट और अपवित्र समझा गया। स्त्री से ही जन्म पानेवाले पुरुष ने अपने को तो पवित्र समझा, परन्तु स्त्री को अपवित्र, यह कैसी विडम्बना है ! ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में पशुओं की आहुतियाँ दी जाती रहीं। भला हत्या का धर्म से क्या सम्बन्ध ? ये सब

कार्य धर्म के ही नाम पर होते रहे और धर्म वैसे ही बदनाम होता रहा ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि कारण तो कुछ और ही थे, परन्तु धर्म वैसे ही बदनाम होता रहा । इसी सन्दर्भ में एक आख्यायिका का यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा । एक व्यक्ति के पास एक बन्दर और एक कटड़ा थे । वह व्यक्ति प्रातःकाल को दोपहर का भोजन तैयार करके कमरे में रख जाता, दरवाजे की साँकल लगा जाता । स्वामी के चले जाने के पश्चात् बन्दर साँकल को खोल लेता और मालिक का भोजन खा जाता और अपना पंजा कटड़े के मुँह पर मल देता । मालिक जब आता तो उसका खाना उसे नहीं मिलता था । मालिक देखता कि कटड़े के मुँह पर दाल या सब्जी मली हुई होती थी । मालिक को कटड़े पर बहुत क्रोध आता और वह उसकी पिटाई कर देता । दो-तीन दिन तक ऐसे ही होता रहा । एक दिन मालिक ने सोचा कि मैं तो दरवाजा बन्द करके जाता हूँ, कटड़ा इसे कैसे खोल सकता है ? हो न हो, यह बन्दर की ही शरारत है । ठीक यही दशा धर्म की भी हुई । साम्प्रदायिकता, भ्रष्ट आचरण, पौराणिकता और स्वार्थसिद्धि आदि के कारण बदनामी धर्म की ही होती रही ।

धर्म पर बुद्धिजीवियों की ओर से कई आक्षेप किये गए हैं । उनका एक आक्षेप यह है कि धर्म भाग्यवाद को प्रोत्साहित करता है । व्यक्ति भाग्य का आश्रय लेकर अपनी वर्तमान स्थिति में सन्तुष्ट रहता है और आर्थिक परिवर्तन अथवा क्रान्ति पर उतारू नहीं होता । इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार का प्रत्येक मत-मतान्तर भाग्य में विश्वास रखता है, जबकि उन मत-मतान्तरों को तो भाग्य में विश्वास रखना ही नहीं चाहिए जो आवागमन को नहीं मानते । भाग्य तो जीव के अपने कर्मों का फल होता है । जब जीवों के पूर्व-जन्म ही नहीं तो पूर्व-कर्म कहाँ हुए ? जब पूर्व-जन्मों के कर्म ही नहीं तो भाग्य कहाँ से आया ? ऐसे मत-मतान्तरों में भाग्य तो ईश्वर की ओर से होता है । ईश्वर किसी को मूर्ख, किसी को विद्वान्, किसी को निर्धन और किसी को धनवान् बनाता है तो क्यों ? वैदिक धर्म में भी भाग्य को माना गया है, परन्तु भाग्य से बड़ा पुरुषार्थ माना गया है । पिछले कर्मों का फल ही भाग्य है और वर्तमान कर्म और पुरुषार्थ ही भावी भाग्य के निर्माता हैं । वैदिक धर्म पुरुषार्थ का विरोधी नहीं है । भाग्य के सहारे रहकर पुरुषार्थ न करना वैदिक धर्म को मान्य नहीं है । भाग्य को मानने का यह अर्थ नहीं है कि हम आर्थिक उन्नति ही न करें । हाँ, आर्थिक क्रान्ति के नाम पर धनवानों का बध किया जाए, वैदिक धर्म इसकी स्वीकृति नहीं देता ।

धर्म पर यह भी आक्षेप किया जाता है कि यह वैयक्तिक साधना पर अधिक बल देता है और सामाजिक भावना को हतोत्साहित करता है । इस आक्षेप में भी सचाई नहीं है । धर्म में जो परोपकार पर बल दिया गया है, वह सामाजिकता का ही पोषक है । धर्म यह कदापि नहीं कहता कि हम केवल अपनी ही उन्नति करें,

दूसरों की उन्नति की ओर कोई ध्यान ही न दें।

धर्म पर एक यह आक्षेप भी किया जाता है कि धर्म आस्था की वस्तु है, तर्क की वस्तु नहीं। यह बात इस्लाम और ईसाइयत पर भले ही लागू हो, परन्तु धर्म पर लागू नहीं होती। वैदिक धर्म में तर्क को ऋषि कहा गया है।

धर्म पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह स्वर्ग-प्राप्ति की ओर व्यक्ति को अधिक उत्साहित करता है, परन्तु यह आक्षेप ठीक नहीं है। वैदिक धर्म में इहलोक और परलोक दोनों की उन्नति का नाम धर्म कहा गया है। वैशेषिक शास्त्र के अनुसार—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

—(वैशे० दर्शन १ : २)

‘जिससे मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनों की उन्नति हो, वही धर्म है।’ इस सूत्र के अनुसार वर्तमान जन्म की उन्नति और परलोक अर्थात् दूसरे जन्म के लिए शुभ कर्मों का संचय—ये दोनों ही धर्म के अन्तर्गत आते हैं। वैदिक धर्म यह नहीं कहता कि तुम केवल इस लोक की उन्नति करो और परजन्म के लिए पुण्य-कर्म न करो, अथवा परलोक के साधन ही जुटाते रहो और इस लोक की उन्नति न करो।

धर्म पर पलायनवाद का भी आक्षेप लगाया जाता है कि यह मनुष्य को सांसारिक समस्याओं से भागने की प्रेरणा देता है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। धर्म तो कर्मशीलता का उपदेश देता है। कुछ जन्मजात वैराग्यवान् व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सभी व्यक्ति सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं। वेद ने तो सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की प्रेरणा दी है। गीता विशेष रूप से कर्मयोग की व्याख्या करती है। इसलिए वैदिक धर्म में कर्म की उपेक्षा नहीं की गई। वैदिक धर्म मनुष्य को संसार से भागने की बात नहीं कहता, वह तो मनुष्य को संसार में रहकर संसार के पदार्थों को त्याग-भाव से भोगने की प्रेरणा देता है। वैदिक धर्म केवल निवृत्ति का पाठ ही नहीं पढ़ाता, अपितु प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का समन्वय कराता है।

कुछ विद्वान् विज्ञान और धर्म को परस्पर-विरोधी बताते हैं। वे कहते हैं कि वैज्ञानिक धर्म की कोई आवश्यकता नहीं। अब विज्ञान ने धर्म का स्थान ले लिया है। परन्तु यह मिथ्या धारणा है। विज्ञान और धर्म के विभिन्न क्षेत्र हैं। विज्ञान का क्षेत्र है—विभिन्न पदार्थों की खोज। विज्ञान का मुख्य सम्बन्ध चार विषयों से है—भौतिकी, रसायन, वनस्पति शास्त्र और प्राणि-विज्ञान। भौतिकी का सम्बन्ध है भौतिक पदार्थों की छानबीन से। रसायन का सम्बन्ध है पदार्थों के सम्मिश्रण और नई वस्तुओं के निर्माण से। वनस्पति-शास्त्र वनस्पतियों की खोज करता है। प्राणि-विज्ञान प्राणियों के शरीरों की छानबीन करता है। इनके विपरीत धर्म का

क्षेत्र सर्वथा भिन्न है। धर्म स्वयं में सबसे महान् विज्ञान है। धर्म का सम्बन्ध विशेष रूप से आत्मा और परमात्मा की जानकारी एवं उनके प्रत्यक्षीकरण से है। वस्तुतः धर्म का विज्ञान सर्वांगी है और भौतिक विज्ञान एकांगी। विज्ञान और धर्म के क्षेत्र अलग दिखाई देने पर भी मूलतः परस्पर जुड़े हुए हैं। विज्ञान यदि धर्म से न जुड़े तो संहारक हो जाता है, इसी प्रकार विज्ञान की कसौटी पर धर्म में खोट निकले तो वह धर्म नहीं रहता। धर्म की महत्ता इस बात में है कि विज्ञान जहाँ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले पदार्थों से ही सम्बन्धित है, वहाँ धर्म इन्द्रियों की पहुँच से परे जो पदार्थ हैं, उनके विषय में भी चिन्तन कराता है। धर्म का क्षेत्र विज्ञान के क्षेत्र से कहीं अधिक विस्तृत है। धर्म मनुष्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करता है। अतीन्द्रिय पदार्थों और प्रवृत्तियों का अध्ययन कराने के नाते धर्म का क्षेत्र विज्ञान से कहीं अधिक व्यापक है।

विज्ञान पदार्थों की खोज करता है परन्तु पथ-प्रदर्शन नहीं करता; पथ-प्रदर्शन केवल धर्म करता है। धर्म ही बताता है कि वैज्ञानिक आविष्कारों का सदुपयोग किस प्रकार करना है। यदि मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग करता है तो वह अधर्म के कारण और बुद्धि के दुरुपयोग के कारण करता है। धर्म तो विज्ञान का सदुपयोग ही सिखाता है।

विज्ञान ने मनुष्य के सुख और आराम के उपकरण बनाए हैं और दूरी को समीप ला दिया है, परन्तु विज्ञान ने मनुष्य को विलासी, अहंकारी और नास्तिक भी बना दिया है। सुख-सुविधा के साधनों के कारण व्यक्ति विलासी बन गया है, परन्तु धर्म मनुष्य को विलासिता को नियन्त्रित करने की प्रेरणा देता है। धर्म ने मनुष्य को संयम और सदाचार की प्रेरणा दी है। विज्ञान मनुष्य को प्रवृत्ति की ओर ले जाता है, जबकि धर्म प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति का समन्वय करता है। विज्ञान ज्यों-ज्यों आविष्कार करता जा रहा है, त्यों-त्यों मनुष्य अहंकारी बनता जा रहा है। धर्म मनुष्य को अहंकार छोड़ने की प्रेरणा देता है और विनम्रता का पाठ पढ़ाता है। विज्ञान ने प्रकृति के रहस्य की खोज के कारण मनुष्य को नास्तिक बना दिया है। यह क्षुद्र प्राणी अहंकार के मद में अब उस परम सत्ता से भी इन्कार करने लगा है। इसके विपरीत धर्म मनुष्य को परमसत्ता का विश्वासी बनाता है और उसके प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा उत्पन्न करता है।

विज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ है तो धर्म का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ-साथ अन्तरात्मा से भी है। विज्ञान का सम्बन्ध बाह्य उन्नति से है और धर्म का सम्बन्ध आन्तरिक उन्नति से। मनुष्य को दोनों उन्नतियों की आवश्यकता है। विज्ञान और धर्म दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न धर्म की महत्ता को अस्वीकार किया जा सकता है, न विज्ञान की महत्ता को। दोनों के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता।

उक्त आधार पर स्पष्ट है कि धर्म का क्षेत्र विज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक है। वैज्ञानिक को आविष्कार करने के लिए धैर्य और एकाग्रता को अपनाना पड़ता है। इन दोनों गुणों का आश्रय लिये बिना कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार नहीं कर सकता। अन्ततः वैज्ञानिक को भी धर्म के नियमों का आश्रय लेना पड़ता है।

धर्म विज्ञान का विरोध कभी नहीं करता। यद्यपि ईसाई मत के अनुयायियों ने वैज्ञानिकों को सत्य के शोध और आविष्कारों के लिए अनेक यातनाएँ दीं, परन्तु भारतवर्ष में ऐसी कोई घटना नहीं घटी।

धर्म एक शाश्वत संस्था है। कोई युग ऐसा नहीं था जबकि धर्म की सत्ता को स्वीकार न किया गया हो। अफ्रीका की जंगली जातियों में भी ईश्वर की सत्ता का विचार पाया गया है। एस्कीमो जैसी असभ्य जातियाँ भी मरने के पश्चात् बर्फ में शव को गाड़कर उसके सिरहाने कुछ वस्तुएँ रख देती हैं ताकि आगे उसके काम आ सकें। इससे पता चलता है कि एस्कीमो भी आत्मा और भावी जीवन में विश्वास रखते थे। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि नैतिकता यद्यपि सब मत-मतान्तरों का सार है, परन्तु केवल नैतिकता से बात नहीं बनती। परमात्मा और आत्मा मनुष्य के गले ऐसे पड़े हैं कि छुड़ाए नहीं छोड़े जा सकते।

धर्म मनुष्य की आवश्यकता है। जब से मनुष्य ने धरती पर आँखें खोलीं, तब से धर्म उसके साथ जुड़ा रहा है। मनुष्य कितना भी यत्न करे, धर्म को नहीं छोड़ सकता। साम्यवादी संस्थाबद्ध रूप से भी 'युद्ध की मर्यादा' के नाम पर धर्म का बहिष्कार करने में असमर्थ ही रहे हैं। मनुष्य की श्रेष्ठता ही धर्म (नैतिकता + आध्यात्मिकता) के आचरण से है। धर्म ही पशु और मनुष्य में विभाजक रेखा खींचता है। धर्म के कारण ही मनुष्य 'मनुष्य' कहलाने का अधिकारी बनता है।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

भोजन, नींद, भय और सम्भोग—ये पशुओं और मनुष्यों में सामान्य होते हैं। मनुष्य की उनसे श्रेष्ठता धर्म का आचरण करने के कारण है। जो धर्म से हीन है, वह पशुओं के समान है। □

वेद स्वतःप्रमाण हैं

लेखक—सुनहरीलाल छिब्रर

१. वेद सृष्टि का आदि ज्ञान है। आर्यसमाज इसको मनुष्य-मात्र के लिए ईश्वरीय ज्ञान मानता है। यह ज्ञान अनूठा, सत्य और अनुभवसिद्ध है।
२. कणाद मुनि के मतानुसार 'बुद्धिपूर्वा कृति वेदे'—वेद में वाक्यरचना बुद्धि-पूर्वक है, अर्थात् संव बातें बुद्धि के अनुकूल हैं।
३. उदाहरणार्थ अथर्ववेद के काण्ड १९, सूक्त १५, मन्त्र ६ की ओर ध्यान दिलाया जाता है—

‘ओम् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।’

अर्थ—हे परमात्मन् ! मुझे मित्र से अभय हो, अर्थात् भय न हो। शत्रु से अभय हो, जानकार से अभय हो और जो सामने है उससे भी अभय हो।

४. संशय होता है कि शत्रु से तो भय की सम्भावना युक्तिसंगत है; जिसे (केवल) जानते हैं और अन्य जो सामने है उससे भी भय हो सकता है, परन्तु मित्र से नहीं। उससे कैसे भय हो सकता है? वेद में मित्र से क्यों भय बताया गया? मित्र तो मित्रभाव का पालन करता हुआ रक्षा करेगा।
५. संशय इसलिए होता है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है। वेदज्ञान ईश्वरीय है—सर्वकालीन है। जिसे एक समय मनुष्य मित्र मानता है, कुछ काल के बाद दूसरी स्थिति में वह मित्र नहीं प्रतीत होता। उस स्थिति में वह भयप्रद हो जाता है। अतः उपरिलिखित वेदमन्त्र में भाव ‘अभयं मित्राद्...’ सत्य सिद्ध होता है।

६. आचार्य चाणक्य अपने नीतिग्रन्थ के अ० २ श्लोक ६ में कहते हैं—

‘न विश्वसेत् कुमित्रे च, मित्रे चापि न विश्वसेत् ।’

अर्थ—कुमित्र पर विश्वास न करे और मित्र पर भी (सदैव) विश्वास न करे। कारण? स्थितियाँ पलटती रहती हैं। मित्र सदैव मित्र सिद्ध नहीं होता।

७. पञ्चतन्त्र के ‘मित्रसम्प्राप्ति’ नाम द्वितीय तन्त्र में बृहस्पति नीति के आधार पर आचार्य विष्णु शर्मा ने कहा है—

“न विश्वसेदविश्वस्तं, विश्वस्तं नाऽति विश्वसेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति” ॥४५॥

अर्थ—अविश्वसनीय व्यक्ति का कभी विश्वास न करे और विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे, क्योंकि अधिक विश्वास कर लेने पर जो भय उत्पन्न होता है—विपत्ति आती है, वह मूल (जड़) तक उखाड़ देनेवाली होती है ।

८. आधुनिक दृष्टान्त—

भारत और रूस देश में चिरकाल से मैत्री है परन्तु हिन्दुस्तान टाइम्स मिति ३ सितम्बर १९८६ में छपे समाचार में लोकदल-नेता सुब्रह्मण्य स्वामी ने रूस पर कड़ा आक्षेप करते हुए कहा कि सोवियत-विश्व-एटलस में सम्पूर्ण अक्सार्डिचन वा अरुणाचल के इलाके को चीन का हिस्सा दिखलाया गया है। इससे भारत वा चीन में सीमा-निर्धारण-सम्बन्धी वार्तालाप पर कुप्रभाव पड़ता है। इस समाचार में यह भी लिखा गया है कि यह एटलस ‘विदेश मन्त्रालय’ में उपलब्ध है। श्री स्वामी ने प्रधानमन्त्री से अनुरोध किया कि रूस देश से अपनी नीति को बदलना आवश्यक है और आत्मनिर्भरता से निष्पक्ष नीति को अपनाते हुए विश्व की दूसरी महान् शक्ति (संयुक्त राष्ट्र अमरीका) से भी समभाव स्थापित किया जाए। इस स्थिति में मित्र देश रूस से भय उत्पन्न हुआ। यह आधुनिक अनुभव सिद्ध करता है कि हमारी बुद्धियाँ सीमित हैं। हमारे ज्ञान में त्रुटि सम्भव है। ईश्वरीय ज्ञान असीम का—त्रिकालज्ञ का ज्ञान है। वह सर्वकालीन है, शाश्वत सत्य है।

९. वेद सत्य ज्ञान की पुस्तक है। इस ज्ञान को प्रकाशित करने के लिए हम महर्षि दयानन्द के आभारी हैं।

१०. मनुस्मृति में मनु जी ने ‘वेदोऽखिलो धर्ममूलम्—वेद सब धर्मों का मूल स्रोत है’ कहा है। तदनन्तर “धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति”—धर्म-तत्त्व के जिज्ञासुओं के लिए वेद को परम प्रमाण बतलाया है। जिस विद्या को आजकल ‘राजनीति’ नाम देते हैं, उसको मनु जी ने ‘राजधर्म—राजा के लिए पालनीय धर्म’ कहा है।

मनु जी के मतानुसार वेद-मत प्रमाण की पराकाष्ठा है—परम प्रमाण है। तदनन्तर किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। अतः यह सिद्ध है कि ‘वेद स्वतः प्रमाण हैं’।



भागवत और महादेव

लेखक—पण्डित शिवशंकर शर्मा (मिथिला देश-निवासी, काव्यतीर्थ)

श्रीमद्भागवत चतुर्थ स्कन्ध में यह प्रसंग आता है कि एक समय किसी यज्ञ में उस समय के प्रसिद्ध ऋषि-मुनि, देव-देवी, ब्रह्मा आदि सब कोई इकट्ठे हुए। पश्चात् दक्ष प्रजापति अपने इष्ट मित्र, मन्त्री, महामन्त्री आदि के साथ उस महा-सभा में पहुँचे। इनको देख सभास्थ सब कोई उठ खड़े हो सम्मान कर अपने-अपने आसन पर पुनः बैठ गए। परन्तु महादेव और ब्रह्मा नहीं उठे। ब्रह्मा तो दक्ष प्रजापति के पिता ही थे, अतः उनके न उठने पर प्रजापति को क्रोध नहीं हुआ। परन्तु महादेव (जो इनके दामाद थे) के उत्थानादि सम्मान न करने से दक्ष को अतिशय क्रोध हुआ। उस समय दक्ष ने अपने दामाद के विषय में यह कहा है—

लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे।

अनिच्छन्नप्यदा बालां शूद्रायेवीशतीं गिराम्॥१३॥

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्युतः।

अटत्युन्मत्तवन्नग्नः व्युत्तकेशो हसन् रुदन्॥१४॥

(चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय २)

अर्थ—“इस क्रियाहीन, अपवित्र, मर्यादा तोड़नेवाले, अभिमानो महादेव को अपनी कन्या देना नहीं चाहता था, परन्तु जैसे शूद्र को कोई वेदवाणी प्रदान करे, वैसे मैंने कन्यादान किया ॥१३॥ यह घोर मरघटों में प्रेत और भूत-गणों को संग ले, उन्मत्त की नाई नंगा, खुले केश हँसता और रोता फिरा करता है” ॥१४॥

चिताभस्मकृतस्नस्त्र, प्रेतरजास्थिभूषणः।

शिवाय देशोत्पशिवो मत्तोन्मत्तजनप्रियः।

पतिः प्रमथभूतानाम् तमोमात्रात्मकात्मनाम्॥१५॥१६॥

अर्थ—“चिता की भस्म से स्नान कर, प्रेतों के पुण्यों की माला पहन, हड्डियों के गहने धारण कर विचरता है। नाम तो इसका शिव है और है अशिव। स्वयं आप भी मत्त है और मत्त लोग ही इसे प्रिय लगते हैं और केवल तमोगुण-स्वभाववाले प्रमथ और भूतों का पति है” ॥१५॥ इत्यादि महादेव के आचरण को

श्वसुर ने दिखलाया है।

इसमें सन्देह नहीं कि अपने घर के लोग जितना जानते व जान सकते हैं, उतना अन्य कोई भी नहीं। अस्तु, श्वसुर ने स्वयं कहा कि यह क्रियाहीन है, अपवित्र है, मर्यादा तोड़नेवाला है, इत्यादि। अब पाठक लोग विचार सकते हैं कि महादेव की निन्दा कौन करता है? यदि महादेव सचमुच वैसे ही थे तो दक्ष का उपर्युक्त वाक्य निन्दा नहीं; यदि वैसे नहीं थे, तो अवश्य है। परन्तु प्रतीत होता है कि महादेव यथार्थ में वैसे ही थे जैसा कि दक्ष ने उनका वर्णन किया है; क्योंकि निज श्वसुर से बढ़कर आचरण जाननेवाला और कौन हो सकता है? फिर ऐसे अपवित्र की पूजा से आदमी कैसे पवित्र हो सकता है!

आगे यह क्या है कि महादेव गणागणी नन्दीश्वर ने भी दक्ष को बहुत-कुछ अवाच्य सुनाए, ब्राह्मणों को आप दिया। तब ब्राह्मणशिरोमणि भृगु, ब्रह्मा के पुत्र ने दुरत्य-श्रापरूप ब्रह्मदण्ड चलाकर इस प्रकार महादेव के विषय में कहा है—

भवव्रतधरा येह ये च तान् समनुव्रताः।

पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥२८॥

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः।

विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र देवं सुरासवम् ॥२९॥

अर्थ—“जो शिव का व्रत धारण करते हैं और जो उनका अनुसरण करते हैं, वे सच्छास्त्रों से उलटे चलनेवाले पाखण्डी हो जावें ॥२८॥ और आचारभ्रष्ट होकर मूढ़ बुद्धिवाले वे लोग जटा, भस्म, अस्थि धारण करके शिव की दीक्षा में प्रवेश करें कि जहाँ मदिरा और आसव यही देवताओं की नाई पूजनीय गिने जाते हैं” ॥२९॥

ब्रह्म च ब्राह्मणादचं व यद्वयं परिनिन्दथ।

सेतुं विधारणं पुंसां अतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

एष एव हि लोकानां शिवपन्थाः सनातनः ॥

ये पूर्वं चानुसंतस्थुः यत्प्रमाणं जनाद्वनः ॥३१॥

अर्थ—“मनुष्यों की मर्यादा को धारण करनेवाले वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करते हो, अतएव तुम पाखण्ड में पड़े रहो ॥३०॥ लोकों का यही वेदमार्ग सनातन और कल्याणकारी है; क्योंकि पूर्व-ऋषियों ने इसका आश्रय लिया है और इसमें साक्षात् भगवान् प्रमाण हैं” ॥३१॥

तं ब्रह्मा परमं शुद्धं संता धर्मं सनातनम्।

विग्रह्यं यातु पाखण्डं, देवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥

अर्थ—“सत्पुरुषों के सनातन मार्गरूप इस परम शुद्ध वेद की निन्दा करके तुम पाखण्ड में पड़ो कि जहाँ भूतों का पति तुम्हारा देवता है।”

इन श्लोकों पर विचार करना चाहिये। इनसे भी स्पष्ट विदित होता है कि जिस समय यह पुराण बनाया गया था, उस समय भी शैवों के आचरण बहुत निन्दनीय और घृणित थे। “यत्र दैवं सुरासवम्” ‘जहाँ पर सुरा ही देवता है’। इससे यह सिद्ध होता है कि मदिरापान इनके यहाँ प्रधान था। अभी तक शैव लोग अच्छे प्रकार के मद्यपान करते हैं। बिना मदिरा के कोई शैव नहीं हो सकता। शैव मत की ही एक शाखा शाक्त है। भारतवर्ष में अभी तक शतशः अघोरी पाए जाते हैं। ये प्रतिक्षण मदिरा पीते ही रहते हैं। जो आदमी मद्यपान करेगा, वह अवश्य ही पागल बना हुआ रहेगा। अतएव उपासकों ने महादेव को पागल बना रखा है। मद्य पीनेवाले पवित्र भी नहीं हो सकते। अतः महादेव को अपवित्र कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय भी शैव लोग क्रियाहीन, अपवित्र व मद्यपायी थे। पुनः ‘ब्रह्मच ब्राह्मणश्चैव’ इत्यादि से सिद्ध होता है कि यह शैव मत विल्कुल वेद-विरुद्ध है। शैव और शाक्त व्यवस्था में लिखा है कि वैदिक धर्म माननेवाले की सद्गति नहीं होती और वैदिक मन्त्र से जो क्रिया की जाती है वह फल देने में समर्थ नहीं होती। यथा—

निर्वीर्याः श्रौतजातीयाः विषहीणोरगा इव ।
 सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव ॥
 मद्यक्ता दुर्दिनं धर्मं, हित्वान्यद्धर्ममोहते ।
 अमृतं स्वगृहे व्यक्त्वा क्षीरमाकं स वाञ्छति ॥
 नान्याः पन्था मुक्तिहेतुरिहामत्र सुखाप्तये ।
 यथातन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥

(महानिर्वाणतंत्र २)

अर्थ—महादेव जी पार्वती महारानी से कहते हैं कि “हे सुन्दरि ! वैदिक सम्प्रदाय विषहीन सर्प के समान निर्वीर्य हो गए हैं। सतयुग आदि में उनका फल होता था, परन्तु कलयुग में तो वे मृतक के समान हैं। हे वरारोहे ! मेरे मुख से निःसृत धर्म को छोड़ अन्य धर्म को जो चाहता है, वह मानो अपने गृह में विद्यमान अमृत को त्याग अर्क वृक्ष के दूध की इच्छा करता है। इस लोक और परलोक में सुख-प्राप्ति के लिए कोई अन्य मार्ग मुक्ति का नहीं है, जैसा कि तन्त्रोदित मार्ग मोक्ष और सुख के लिए है।”

ऐसे-ऐसे सहस्रशः अनेक वाक्य मिलते हैं जो बड़े जोर-शोर से वैदिक धर्म का खण्डन करने में योजित किये गए हैं। इसलिए भागवतकर्त्ता का कथन कि “ये शैव लोग वेद के निन्दक हैं” बहुत ही सत्य है। यदि विचारदृष्टि से देखेंगे तो शैवादि धर्म की प्रवृत्ति वैदिक धर्म के लोप करने की ही है, क्योंकि दुराचार, मद्यपान, पञ्चमकार-सेवनादि दुष्ट कर्म, वेद मानते हुए कैसे कर सकते हैं !

इससे एक बात यह सिद्ध होती है कि पौराणिकों ने महादेव को वेद-विरोधी

माना है। इसी कारण प्रायः महादेव असुरों के गुरु, वर देनेवाले रक्षक आदि माने गए हैं। यह बात वाणासुर की आख्यायिका से भी स्पष्ट होती है। अब पाठक लोग विचार करें कि महादेव का निन्दक वास्तव में कौन है? आर्य लोग तो इनकी बातों को ही दोहराते हैं। अपनी ओर से न तो नई बातें गढ़ते हैं और न कहते हैं। सनातनधर्मियों के सम्बन्ध में आर्य लोगों की कार्यवाही इस उदाहरण के सदृश है कि जैसे कोई निस्स्वार्थ हितचिन्तक आदमी अपने पड़ोसी से कहे कि मित्र, तुम्हारे गृह में अमुक-अमुक स्थान पर बड़े-बड़े करत पड़े हैं, देखियो सावधान रहना ! यद्यपि इस हितचिन्तकता के लिए आर्य लोग सम्प्रति सनातन-धर्मियों के कुवाच्य-वाण के लक्ष्य हो गए हैं तथापि कभी-न-कभी वह सुदिन अवश्य आएगा जबकि सनातनधर्मी लोग अपनी हानि को हानि और लाभ को लाभ समझेंगे। □

अण्डा खाइए, हृदय रोग बुलाइए !

डॉ० योगेश कुमार अरोड़ा

१९८५ के नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले अमेरिका के हृदय-रोग विशेषज्ञ, डॉ० माईकल एस० ब्राउन तथा डॉ० जोसेफ एल० गोल्डस्टीन, जिनकी हृदय-रोग की खोज पर विश्व का सर्वोत्तम पुरस्कार मिला, जिसकी राशि २,२५,००० डालर है। नोबेल पुरस्कार के ८४ वर्षीय इतिहास में यह राशि सबसे अधिक है। आप दोनों हृदय-रोग से बचने के लिए मांसाहार तथा अण्डे का सेवन न करने की सलाह देते हैं।

अमेरिका में पचास प्रतिशत मौतें सिर्फ हृदय-रोग के कारण होती हैं। नोबेल पुरस्कार के संयोजकों ने बताया कि डॉ० माईकल एस० ब्राउन तथा जोसेफ एल० गोल्डस्टीन दोनों अमेरिकन डॉक्टरों की आश्चर्यजनक खोज से अब इस रोग पर काबू पाया जा सकेगा। इनकी खोज के अनुसार हृदय-रोग वंशानुगत तथा खान-पान पर निर्भर करता है। इनके अनुसार यह रोग बच्चों को बचपन से शुरू हो जाता है, पर इसका पता काफी देर बाद चलता है। अब तक वर्षों से चली आ रही यह धारणा कि बच्चों को अण्डे खाने से नुकसान नहीं होता, विपरीत निकली। भले ही वे ऊपर से हूँट-पुँट दिखाई दें परन्तु अन्दर से हृदय-रोग अस्त हो जाते हैं। खोज के अनुसार प्रत्येक मानव के शरीर में कोलस्ट्रॉल नामक एक तत्त्व उत्पन्न होता है, यह भोजन द्वारा भी शरीर को प्राप्त होता है। यह तत्त्व वनस्पतियों में नहीं के बराबर होता है। पर मांस, अण्डों तथा जानवरों में प्राप्त बसा में प्रचुर मात्रा में होता है। इस तत्त्व में शरीर में सेल मेम्बरीन तथा हारमोन्स बनते हैं। यह तत्त्व शरीर के लिए आवश्यक भी है। लेकिन अगर यह कालस्टेरोल रक्त वाहिनी में जमना शुरू हो जाता है तो रक्त प्रवाह में बाधा डालता है। यह धीरे-धीरे जमते-जमते इतना अधिक हो जाता है कि रक्त प्रवाह रुक जाता है और हृदय काम करना बन्द कर देता है, इसे 'हार्ट अटैक' कहते हैं। अगर मस्तिष्क में रक्त न जा पाए तो उसे स्टोक कहते हैं। यही पदार्थ मूत्राशय में पथरी का रूप धारण करता है।

नई खोज के अनुसार रक्त में पाये जाने वाले पदार्थ 'लोडेसिटि लिपोप्रोटीन' या एल० डी० एल० है जो कोलस्ट्रॉल को रक्त में अपने साथ प्रवाहित करता है। शरीर में जिगर तथा अन्य भागों के सेलों में एक पदार्थ है जिसको रिस्पटर कहते हैं, वह एल० डी० एल० तथा कोलस्टेरोल को रक्त में से विलीन कर लेता है, जिसके परिणामस्वरूप रक्त प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार जो व्यक्ति मांसाहार तथा अण्डे खाते हैं उनके शरीर में रिस्पेटरो की संख्या में कमी हो जाती है। इसकी कमी में रक्त के अन्दर कोलस्टेरोल की मात्रा अधिक हो जाती है। अधिक मात्रा होने से यह रक्त वाहिनियों में जमना शुरू हो जाता है तथा हृदय-रोग शुरू हो जाता है।

कोलस्टेरोल अण्डों में सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप चर्म रोग भी हो जाते हैं। अण्डे से कुछ लोगों को एलर्जी भी होती है। कुछ दिन पूर्व इण्डियन काउंसिल ऑफ एग्रीकलचर रिसर्च द्वारा किए गये सर्वेक्षण से पता चला कि फल, सब्जियाँ अण्डे तथा मांस में डी० डी० टी० के अंश पाए गये। अण्डों में डी० डी० टी० का अंश अधिक मात्रा में होता है, क्योंकि पोल्ट्री फार्म में मुर्गियों को महामारी से बचाने के लिए डी० डी० टी० आदि दवाइयों का खूब घड़ले से इस्तेमाल होता है। परिणामस्वरूप अण्डे खानेवाले लोगों के पेट में इन दवाइयों के अंश आ जाते हैं। यहाँ तक कि स्त्रियों के दुग्ध में डी० डी० टी० आदि के अंश पाए गये। इन दवाइयों के भयंकर परिणाम हो सकते हैं। अमेरिका आदि देशों में डी० डी० टी० पर रोक लगी हुई है पर हमारे देश में इस पर खुली छूट है।

अब तक अण्डों को सुपाच्य समझा जाता था, क्योंकि यह प्रयोग जानवरों पर किए जाते थे। कुछ वैज्ञानिकों ने जब इनका प्रयोग मनुष्यों पर किया तब पाया गया कि सुपाच्य नहीं होते हैं। वैसे भी अण्डे के छिलके पर लगभग १५००० सूक्ष्म छिद्र होते हैं जो कि सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखे जा सकते हैं। इनके द्वारा कई जीवाणु अण्डे में प्रवेश कर जाते हैं जो अण्डे को खराब कर देते हैं। आपने अण्डों के समूह से बदबू आती तो महसूस की होगी, वैसे भी अण्डे आठ डिग्री सेंलिसियस के तापमान पर खराब होने शुरू हो जाते हैं। इनको रखने के लिए भारत में इतना तापमान रखना कठिन बात है। आजकल विदेशों में अण्डे आदि न खाने की राय दी जा रही है।

(‘नवभारत टाइम्स’ से साभार)

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें	विद्यार्थियों की दिनचर्या	५.००
प्रभु दर्शन	१२.००	ब्रह्मचर्य गोरव
तत्त्वज्ञान	१५.००	वैदिक विवाह पद्धति
प्रभुमिलन की राह	१५.००	आदर्श परिवार
घोर घने जंगल में	१५.००	ऋग्वेद सूक्ति-सुधा
मानव और मानवता	२०.००	अथर्ववेद सूक्ति-सुधा
उपनिषदों का सन्देश	१२.००	यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा
दो रास्ते	१२.००	सामवेद सूक्ति-सुधा
यह घन किसका है ?	१२.००	ऋग्वेदशतकम्
बोध कथाएँ	१२.००	यजुर्वेदशतकम्
दुनिया में रहना किस तरह	७.००	अथर्ववेदशतकम्
मानव-जीवन-गाथा	५.५०	सामवेदशतकम्
प्रभुभक्ति	५.००	भक्ति संगीत शतकम्
महामन्त्र	५.००	चमत्कारी ओषधियाँ
एक ही रास्ता	५.००	घरेलू ओषधियाँ
भक्त और भगवान्	५.००	प्र० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
आनन्द गायत्री-कथा	४.००	वैदिक विचारधारा का
सुखी गृहस्थ	३.५०	वैज्ञानिक आधार
सत्यनारायणव्रत-कथा	३.००	सत्य की खोज
शंकर और दयानन्द	४.००	ब्रह्मचर्य सन्देश
		५०.००
		५०.००
		१५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

श्री रणवीर लिखित	संस्कार समुच्चय	४५.००
आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००	सत्यार्थ सरस्वती
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत	ईश्वर प्रत्यक्ष	६.००
महाभारतम् (तीन भागों में)	६००.००	डॉ० भवानीलाल भारतीय
वाल्मीकि रामायण	१००.००	श्रीकृष्ण चरित
वाणक्यनीति दर्पण	५०.००	श्यामजी कृष्ण वर्मा
प्रार्थना लोक	२५.००	आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय
प्रार्थना प्रकाश	४.००	स्वामी वेदानन्द सरस्वती
प्रभात वन्दन	४.००	ऋषि बोध कथा
दिव्य दयानन्द	६.००	ईशोपनिषद्
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००	डॉ० प्रशान्त वेवालंकार
कुछ करो कुछ बनो	८.००	धर्म का स्वरूप
		३५.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेदमीमांसा ५०.००

पं० चन्द्रमानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसूधा ४०.००

ओम्प्रकाश त्यागी

वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय ६.००

विष्णुदयाल एम० ए०

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता ८.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल ६.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ६.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना ५.००

कवि श्री कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम् ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान १.००

रामसिंह आर्योपदेशक

ओ३म् की व्याख्या २.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

भगवत भजन जरूरी है १.५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

मुक्ति से पुनरावृत्ति ३.००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सरल अध्ययन २.००

पं० मुखदेव वेदवाचस्पति

नमस्ते की व्याख्या १.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द २.५०

स्वामी श्रद्धानन्द २.५०

गुरु विरजानन्द २.५०

पं० लेखराम २.५०

स्वामी दर्शनानन्द २.५०

पं० गुरुदत्त २.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

हरिश्चन्द विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार २.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.७५

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.७५

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.५०

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०

नैतिक शिक्षा पंचम भाग २.००

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग २.००

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग २.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग २.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग ३.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग ३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या ०.५०

आर्यसत्संग गुटका १.५०

पंचयज्ञ प्रकाशिका ४.००

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २० × ३० ३.००

महर्षि दयानन्द एक रंग १८ × २२ २.००

गुरु विरजानन्द एक रंग १८ × २२ २.००

स्वामी श्रद्धानन्द " " २.००

स्वामी दर्शनानन्द " " २.००

पं० हंसराज " " २.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक
आधार ५०.००

सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
From Old Age to Youth	78.00
एकादशोपनिषद्	७५.००
उपनिषद् प्रकाश	६५.००
संस्कार-चन्द्रिका	५०.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	४०.००
होमियोपैथिक के मूल सिद्धान्त	३०.००
होमियोपैथिक औषधियाँ चित्रण	६०.००
रोग उनकी होमियो० चिकित्सा	७५.००
श्रीमद् भगवद् गीता	५०.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय-साहित्य

जीवात्मा	२५.००
आस्तिकवाद	१५.००
इस्लाम के दीपक	१२.००
मीमांसा प्रदीप	१०.००
आर्यसमाज	८.००
वैदिक धर्म और समाज	६.००
वैदिक मान्यतायें	६.००
इस्लाम और आर्यसमाज	६.००
हम क्या खायें ? घास या मांस	६.००
कर्मफल सिद्धान्त	४.००
वेद प्रवचन	२०.००
भारतीय पतन और उत्थान	५.००
शेक्सपियर के नाटक (सम्पूर्ण ३७ नाटक)	१५०.००
तीन भाग	१५०.००
Light of Truth—	75.00
I and my God	12.00
Worship	12.00
Christianity in India	12.00
Superstitions	12.00

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्य दर्शन का इतिहास	५०.००
वेदान्त दर्शन का इतिहास	४०.००

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त)	८०.००
सांख्य सिद्धान्त	४०.००
सांख्य दर्शन	२५.००
वैशेषिक दर्शन	४०.००
न्याय दर्शन	४०.००
योग दर्शन	४०.००

पं० सत्यकेतु विद्यालंकार कृत

आर्यसमाज का इतिहास (भाग १)	१००.००
" " (भाग २)	११०.००
" " (भाग ३)	१००.००
" " (भाग ४)	१००.००

प्राचीन भारतीय इतिहास का
वैदिक युग २८.००

दक्षिण पूर्व और दक्षिणी एशिया	
में भारतीय संस्कृति	२३.००
म० एशिया व चीन में भारतीय	२०.००
प्राचीन भारत	२८.००
भारतीय संस्कृति का विकास	२४.००
प्राचीन भारत का धार्मिक,	
सामाजिक और आर्थिक जीवन	२४.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	४४.००
प्रमुख राज्यों के संविधान	२४.००
समाज शास्त्र	३०.००
चाणक्य	२२.००
पतन और उत्थान	२६.००
सविता देवता	भगवद्गुप्त ३५.००
बृहस्पति देवता	भगवद्गुप्त ४०.००

स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती कृत

आत्म विज्ञान	हिन्दी ४०.००
बहिरंग योग	हिन्दी ४५.००
ब्रह्म विज्ञान	हिन्दी ७५.००
निर्गुण ब्रह्म	हिन्दी २५.००
दिव्य ज्योति	हिन्दी ४०.००
प्राण विज्ञान	हिन्दी २५.००
दिव्य शब्द विज्ञान हिन्दी	४०.००
व्याख्यान माला	
(तीन भाग) हिन्दी	८५.००

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली-६

हमारे विशिष्ट संग्रहणीय प्रकाशन

आलोचना

प्रो० नित्यानन्द पटेल

प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में
सांस्कृतिक चेतना 125.00

छायावाद : नया मूल्यांकन 35.00

पूर्व और पश्चिम 35.00

उपन्यास तथा कथा साहित्य

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अपने पराये 12.00

अकेली 12.00

चन्द्रनाथ 12.00

अनुराधा 12.00

परिणीता 12.00

बंकु का दानपत्र 12.00

बड़ी दीदी 12.00

देवदास 15.00

विराज बहू 12.00

विन्दु का बेटा 12.00

ब्राह्मण की बेटी 12.00

पण्डित मोशाय 12.00

देहाती समाज 15.00

मफली दीदी 12.00

सुनील शर्मा

हितोपदेश 25.00

वि० अनन्त

माँ 30.00

आज की सावित्री 30.00

दुल्हन 30.00

देवता 30.00

मुझे जीने दो 30.00

कसम 30.00

तकनीकी

हयात

सुबोध रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक 25.00

सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग 20.00

सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड 25.00

घर गृहस्थी

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भ स्थिति, प्रसव और शिशुपालन 25.00

सुशीला कपूर

आधुनिक सिलाई-कटाई 25.00

मीनाक्षी धोंगड़ा

पाक कला (पॉकेट साइज) 6.00

मिष्ठान्न कला (पॉकेट साइज) 6.00

अचार मुरब्बे चटनी (पॉकेट साइज) 6.00

शर्वत आइस्क्रीम स्ववेश („) 6.00

स्वास्थ्य

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदय रोग : कारण निवारण 20.00

डा० टी० बी० एल० जायसवाल

कैंसर : कारण और निवारण 20.00

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

आहार चिकित्सा 25.00

डॉ० समरसेन

योगासन से इलाज 20.00

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डॉक्टर (होम्योपैथी) 25.00

विविध

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग का वरदान 25.00

अरुण अर्णव

सचित्र एशियाई खेल 25.00

(9वें एशियाई खेलों तक)

राजीव वत्स

जूडो फॉर ऑल 15.00

जूडो आत्मरक्षा के लिए 10.00

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गीताञ्जलि 25.00

कृष्ण विकल

वाणी 20.00

सुबोध पब्लिकेशन्स

2/3, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

आचार्य चतुरसेन	
आदर्श बालक -1	6.00
आदर्श बालक -2	6.00
सन्तराम वत्स्य	
लोक व्यवहार	5.00
संविधान की कहानी	10.00
भीष्म पितामह	6.00
वीर अर्जुन	6.00
महाबली भीम	6.00
यशपाल जैन	
बोध कथाएँ	5.00
प्रेरक कथाएँ	5.00

श्यामचन्द्र कपूर

प्रत्येक का मूल्य 6.00

सच्चा सपूत	(जातक कथाएँ)
नंदिनी का वरदान	(रामायण की कथाएँ)
शरणागत की रक्षा	(वेद की कथाएँ)
कीर्ति का मार्ग	(महाभारत की कथाएँ)
सबसे बड़ा ज्ञानी	(उपनिषद् की कथाएँ)
फूलों की वर्षा	(पुराण की कथाएँ)
विश्वास का फल	(कुरान की कथाएँ)
जनता का प्यारा	(भागवत की कथाएँ)
सपने देखने वाला	(बाइबिल की कथाएँ)
आशा की ज्योति	(जैनग्रन्थों की कथाएँ)

पं० आनन्दकुमार

दो सूतरी पोलिटिक	25.00
------------------	-------

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

इन्ध्यावन कहानियाँ	110.00
एक श्रीर श्रीगणेश	22.00
अपने-अपने दायरे	30.00

सुमेधा

हमारी एकता के प्रतीक त्योहार	6.00
------------------------------	------

विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'

ऋतुगीत	6.00
पितृभक्त बालक	शरण 6.00
तपस्वी बालक	लक्ष्मी 6.00
ज्ञानी बालक	प्रभात कुमार 6.00
भक्त बालक	संगीता 6.00
ईमानदार बालक	सुदेश शरण 6.00

शिवकुमार गोयल

क्रांतिकारी सावरकर	6.00
--------------------	------

शान्ति भट्टाचार्य

बलिदान की कहानियाँ	6.00
--------------------	------

स्कूल, कॉलेज में खेले जाने योग्य

चिरंजीव के नाटक

हास्यमंच—हम-तुम	20.00
हास्यमंच—घर-दफ्तर	22.00
हास्यमंच—देश-विदेश	25.00
पाँच प्रहसन	25.00
मन्दिर की जोत	18.00
दादी माँ जागी	25.00
महाश्वेता (उपन्यास)	45.00
रतजगा	20.00

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज के मनस्वी विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्य-वैदिक साहित्य लिखकर बड़ी सेवा की है। अभी हाल ही में उनकी कृतियों का संकलन करते हुए श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी को उनके लिखे हिन्दी-शेक्सपियर प्राप्त हुए।

‘शेक्सपियर के नाटक’

३७ नाटकों के कथानक तीन भागों में मूल्य १५०.००

सुबोध पब्लिकेशन्स

२/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रणीत

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुरुता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षेप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक संख्या बढ़कर एक लाख पहुँच गई है। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों, अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूँसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

• आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

द्वारा तैयार एक विशिष्ट संस्करण।

इस ग्रन्थ में असम्भव, अश्लील और अप्रासाङ्गिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तारतम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

□ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी भाँकी देखना चाहते हैं,

□ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

□ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

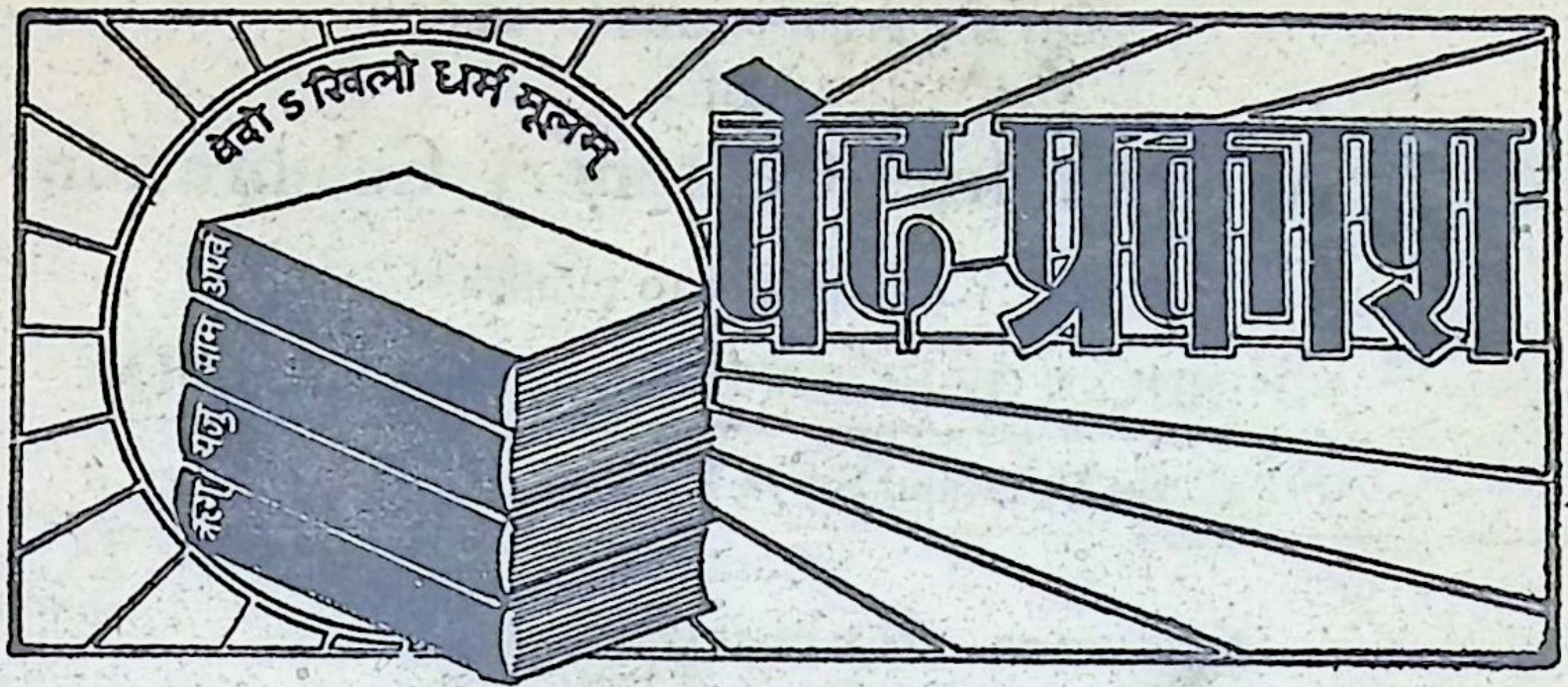
□ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अंगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूतपुत्र था, क्या जयद्रथ को घोड़े से मारा गया आदि

□ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ६००) रुपये। तीन भाग।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



गायत्री महिमा

गायत्री-मन्त्र भारतीय संस्कृति का प्राण है। चारों वेदों का निचोड़ है। ग्य प्राणों को कहते हैं, प्राणों की रक्षा करने के कारण ही इसे गायत्री कहते हैं।

‘गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री’

गायत्री के तीनों अक्षरों में गंगा-यमुना और त्रिवेणी का समावेश है। जिस प्रकार नदियों में गंगा की महिमा सर्वोपरि है, उसी प्रकार गायत्री के समान कोई मन्त्र नहीं है।

गायत्रीसमो संतो न भूतो न भविष्यति।

गायत्री मंत्र के अक्षरों का गुम्फन इस प्रकार हुआ है कि जिसके जप मात्र से समस्त गुह्य ग्रंथियाँ जाग्रत् हो जाती हैं और मनुष्य लघु से विभु बन जाता है।

अक्षराणां तु गायत्र्या गुम्फनं ह्यस्ति तद्विधम्।

भवन्ति जागृता येन सर्वा गुह्यास्तु ग्रन्थयः॥

गायत्री जप से मनुष्य को समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख प्राप्त हो जाते हैं जिसकी वह कामना करता है।

दैन्यरुक्शोकचिन्तानां विरोधाक्रमणापदाम्।

कार्यं गायत्र्यनुष्ठानं भयानां वारणाय च॥

दीनता, रोग, शोक, विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ तथा भय आदि के निवारण के लिए गायत्री का अनुष्ठान करना चाहिए। इससे बाधाओं से छुटकारा मिलता है। गायत्री उपासना हमें प्रतिदिन नियमपूर्वक करनी चाहिए तभी सफलता जल्दी मिलती है।

किसी की गायत्री उपासना कभी निष्फल नहीं जाती, जिस भी परिस्थिति में हों उसी प्रकार ही जप करना चाहिए।

On the Auspicious Occasion
of
D. D. A. V. College Centenary Celebration

We announce to publish

FOUNDERS OF SCIENCES IN ANCIENT INDIA

By Dr Svami Satya Prakash Sarasvati

Contents

- I Atharvan—The First Discoverer of Fire
- II Fire leads to Mechanical Devices
- III Dīrghatamas—The Discoverer of the Vedic Era
- IV Gārgya—The First Enumerator of Constellations
- V Bharadvāja Presides over the First Medicinal Plants Symposium
- VI Ātreya Punarvasu and His Academy of Medicine
- VII Suśruta—The Father of Surgery
- VIII Kaṇāda—The First Expounder of Realism, Law of Causation and Atomic Theory
- IX Medhātithi—First to Extend Numerals to Billions
- X Āryabhata lays Foundations of Algebra
- XI Lagadha—The First to Rationalize Astronomy
- XII Lātadeva & Sriṣeṇa Introduce Greek Astronomy to India
- XIII Baudhāyana—The First Great Geometer

The volume will be ready by October 1985, will be printed on sunlit offset paper by Offset process.

Full cloth bound, Pages 700, Price Rs. 500/-

Pre-publication price Rs. 300/-

BOOK YOUR COPY TODAY

Send Your Order with draft to

GOVINDRAM HASANAND

4408, Nai Sarak, Delhi-110006

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३५, अंक १] वार्षिक मूल्य : दस रुपये [अगस्त १९८५

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ईश्वर का वैदिक स्वरूप

ईश्वर एक और केवल एक है

केनोपनिषद् में शिष्य और आचार्य के प्रश्नोत्तर के रूप में ईश्वरविषयक विवेचन किया गया है। वहाँ लिखा है, चक्षु उसे देख नहीं सकती, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती, मन उसका अनुभवं नहीं कर सकता। उसका शिष्यों को उपदेश कैसे दिया जाए यह भी हम नहीं जानते, न समझ पाते हैं। फिर भी जिन प्राचीन पुरुषों ने उसके विषय में शिक्षा दी है, उनसे सुना है कि ब्रह्म विदित से भी अन्य है, अविदित से भी अन्य है। 'विदित' वह है जिसे हम जानते हैं, उसे हम नहीं जानते अतः वह विदित से अन्य है। 'अविदित' वह है जिसे हम नहीं जानते—उसे हम बिल्कुल नहीं जानते ऐसा भी नहीं है, इस विशाल संसार से उसका आभास तो नास्तिक-से-नास्तिक को भी हो जाता है, अतः वह अविदित से भी अन्य है। आगे आचार्य कहते हैं जो वचन के द्वारा प्रकाश नहीं पाता, जिससे वाणी प्रकट होती है, उसी को तू 'ब्रह्म' जान। जो मन से मनन नहीं करता परन्तु जिसके द्वारा मन मनन करता है उसी को तू ब्रह्म जान।

जो चक्षु से नहीं देखता जिसके द्वारा चक्षु देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान।

जो श्रोत्र से नहीं सुनता जिसके द्वारा श्रोत्र सुनते हैं, उसी को तू ब्रह्म जान।

जो प्राण वायु से साँस नहीं लेता, जिससे प्राण प्राणित हो रहा है उसी को तू ब्रह्म जान।

आइए, वेद में ईश्वर का जो स्वरूप प्रदर्शित है उसको जानने का प्रयत्न करें। वास्तव में ईश्वर के स्वरूप को समझना बहुत कठिन है। वेद ने उस प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाया है कि वह प्रभु एक है। वह सब जगत् का स्वामी है।

य एकश्चर्वणीनां वसूनामिरज्यति ।

इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥

—ऋ० १।७।६

जो एक ही प्रभु पृथिवी पर रहनेवाले पाँच प्रकार के मनुष्यों का तथा सब धनों का स्वामी है, वही उपास्य है ।

यह ईश्वर है तो एक ही परन्तु उसके गुण अनेक हैं, अतः उसके नाम भी अनेक हैं । प्रश्न हो सकता है, भगवान् के कितने नाम हैं ? यदि अनेक नाम हैं तो क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति के अनेक नाम हो सकते हैं ? हाँ, यह सम्भव ही नहीं, ऐसा होता भी है । चार प्रकार के नाम व्यक्तियों एवं भगवान् दोनों के हो सकते हैं । जैसे—पहला अपना नाम, जैसे किसी का नाम विनय है, किसी का विनोद है, किसी का आरती, किसी का वैभव, किसी का वसु और किसी का शान्तनु । इसे निज नाम कहते हैं ।

दूसरा सम्बन्धद्योतक नाम भी हुआ करता है, जैसे पौत्र के सम्बन्ध से किसी व्यक्ति का नाम बाबा या दादी हो जाता है, पिता के सम्बन्ध से किसी का नाम पुत्र और पुत्री हो जाता है ।

तीसरा कर्मद्योतक नाम होता है—जैसे पाठशाला में पढ़ाने से अध्यापक, मशीनों का काम करवाने से इंजीनियर, चिकित्सा करने से डॉक्टर आदि ।

चौथा गुणवाचक नाम, जैसे चित्र बनाने से चित्रकार, गाना गाने से संगीतज्ञ, लेख लिखने से लेखक, कविता करने से कवि, श्रमशीला होने से तपस्विनी और शीलवती होने से सुशीला नाम पड़ जाता है ।

भगवान् के भी चारों प्रकार के नाम होते हैं । भगवान् का अपना नाम 'ओ३म्' है । 'ओं प्रतिष्ठ' (यजु० २।१३) । 'ओं में समाहित हो । 'ओं क्रतो स्मर' (य० ४०।१५) । आत्मन् ! ओं का स्मरण कर । यह तो भगवान् का निजनाम हुआ ।

भगवान् के सम्बन्धपरक नाम भी हैं, जैसे माता, पिता, बन्धु, सखा, जनक, जनिता, पति और मित्र आदि नाम हैं । सबको जन्म देने से वह पिता, मान और प्रेम करनेवाला होने से माता, सबका सहायक होने से बन्धु और सबको स्नेह करने से मित्र कहलाता है ।

कर्मद्योतक नाम के रूप में हम भगवान् को विश्वकर्मा कहते हैं । सूर्य आदि प्रकाशशील लोकों को अपने अन्दर धारण करने से उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं । सगस्त चराचर जगत् को गति देने से वायु, न्यायकारी होने से अर्यमा, बड़ा पराक्रमी होने से उरुक्रम, प्रकाशकर्ता होने से सूर्य, आगे ले जानेवाला होने से अग्नि आदि नामों से हम उसे पुकारते हैं । यजुर्वेद ३२।१ में कहा गया है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

वही पूर्णपुरुष अग्निस्वरूप, वही अखण्डनीय, वही गति देनेवाला, निश्चय करके वही सुख देनेवाला, वही पवित्र, वही सबसे बड़ा, वही सर्वव्यापक और वही सब जगत् का पालनेवाला है अर्थात् इन कर्मों के कारण अग्नि आदि प्रभु के नाम हैं।

परमेश्वर के गुणवाचक नामों में हम उसे 'खम्' सर्वव्यापक होने से कहते हैं। अविनाशी होने से वह अक्षर, सबका स्वामी होने से ईश्वर, स्वामियों का स्वामी होने से परमेश्वर, समस्त विश्व की आत्मा होने से विश्वात्मा, सब आत्माओं का आत्मा होने से परमात्मा, सबसे बड़ा होने से ब्रह्म और देवों का देव होने से वह महादेव कहलाता है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४वें सूक्त के ४६वें मन्त्र में इसीलिए कहा है—
'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' एक ही सत्यस्वरूप को ज्ञानीजन बहुत प्रकार से, अनेक नामों से पुकारते हैं।

सचमुच वह प्रभु अकेले ही विश्व का संचालन कर रहा है। आनन्द स्वामीजी महाराज उसके विषय में लिखते हैं "अहा ! इस कथा के जिस नेता ने इस सोई प्रकृति को जन्म दिया, एकरूपा को अनेकरूपा बना दिया उसी प्रकृति को विकृत करके अनेक सूर्य, अनेक नक्षत्र, अनेक पृथिवियाँ, अनेक समुद्र और अनेक मण्डल तथा लोक बना दिये उसकी कथा कितनी मनोरञ्जक है !" सचमुच यदि हम रात में आकाश में अपनी नजर दौड़ाएँ तो इसमें जो आकाशगंगा दिखाई देती है, इसी में डेढ़ अरब सितारे चमक रहे हैं, इस समय तक दो अरब सौरमण्डल देखे जा चुके हैं और एक सौरमण्डल में वैसे ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी तथा तारामण्डल हैं, जैसे हमारे सौरमण्डल में। आकाशगंगा का व्यास जानने के लिए १७६३ के आगे १६ बिन्दु लगाने होंगे, जिनकी गणना नहीं हो सकती। प्रति सैकिण्ड प्रकाश की गति एक लाख छियासी हजार मील है और कुछ नक्षत्र तो इतने दूर हैं कि उनका प्रकाश पिछले दो अरब वर्ष से अभी तक भी पृथिवी तक नहीं पहुँच पाया है। कितनी बड़ी है यह सृष्टि ! ये सब सौरमण्डल एक बहुत बड़े सौरमण्डल के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं और वह महासूर्य परमेश्वर के नन्हे-से संकेत में बँधा सभी सौर-मण्डलों को व्यवस्था में रख रहा है। वेद कहता है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुस्त विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमौ जनयन् देव एकः ॥

—ऋ० १०।८।१३

जिस प्रभु के नेत्र सर्वत्र हैं, जिसके मुख सर्वत्र हैं, जिसके बाहु सर्वत्र कार्य कर रहे हैं वह पुण्य-पापरूप बाहु के द्वारा उत्पन्न प्रापणीय फलों से जीवों को गति देता है। वही दिव्य गुणयुक्त प्रभु धुलोक और पृथिवीलोक को उत्पन्न करता है अर्थात् एक ही देव इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का उत्पन्नकर्ता, नियन्ता और सञ्चालक है। वह सबको कर्मानुसार फल देता है और उसकी शक्तियाँ सर्वत्र समान हैं।

य एक इद्विद्यते वसु मर्ताय वाशुषे ।

ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ।।

—ऋ० १।८४।७

(वाशुषे मर्ताय) दाता मनुष्य के लिए (यः एकः इत्) जो अकेला ही (वसु विद्यते) धन देता है वह (अप्रतिष्कृतः) अद्वितीय शक्तिशाली (ईशानः) ईश्वर (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु ही (अंग) निश्चय से है ।

स रायस्वामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।

पतिर्बभूवासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ।।

—ऋ० ६।३६।४

अर्थात् हे प्रभो ! वह तू प्रशंसित होता हुआ अत्यन्त आह्लादकारक, निवासकधन की धाराएँ हमारे ऊपर छोड़ दे । तू संसार का अनुपम पति है और सब भुवनों का एक ही स्वामी है ।

सम्पूर्ण जगत् का आधार एक परमात्मा ही है । वही प्रशंसा और नमस्कार करने योग्य है । वेद के ज्ञान द्वारा उसे प्राप्त करके मोक्ष के आनन्द का भोग करना चाहिए ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विस्वीड्यः ।

तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्यम् ।।

—अ० २।२।१

जो दिव्यगन्धर्व अर्थात् भुवनों का धारण करनेवाला है, जो भुवनों का एक ही स्वामी है वही प्रजाओं में नमस्कार करने योग्य है, प्रशंसा करने योग्य है । हे अद्भुत ईश्वर ! उस तुझको मैं वेद द्वारा प्राप्त होता हूँ । तुम्हें नमस्कार हो । तेरा वास तेरे अपने स्वरूप में है ।

वास्तव में वह ईश्वर एक ही है । अज्ञान में पड़कर मनुष्य दूसरे देवी-देवताओं की कल्पना करके अन्यो को देवता या ईश्वर मानकर पूजा करने लगता है ।

कबीर ने कहा है—

हुई जगदीश कहां से आया ?

भुवनस्य यस्पतिरेक एव—संसार का एक ही स्वामी है ।

अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में कहा है—

तमिं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।

—अ० १३।४ (२) । २०

(इदं सहः) यह सामर्थ्य (तं निगतं) उस परमात्मा को प्राप्त है । (सः एषः एकः) वह एक ही है (एकवृत्) अकेला वर्तमान (एक एव) एक ही है ।

सब सामर्थ्य परमात्मा में है और वह एक एवं अद्वितीय है ।

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवचंसं चान्नं चान्नाद्यं च ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥

—अ० १३।४ (२) १४, १५

अर्थात् कीर्ति, यश, पराक्रम और स्थान, ज्ञान का तेज, अन्न तथा खान-पान के पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं जो इस देव प्रभु को एक और व्यापक जानता है ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥

—अ० १३।४ (२) १६-१८

वह परमात्मा न ही द्वितीय, न ही तृतीय, न ही चतुर्थ, न ही पञ्चम, न ही षष्ठ, न ही सप्तम, न ही अष्टम, न ही नवम, न ही दशम कहा जाता है । जो इस देव को एक मानता है, उसको वह प्राप्त होता है अर्थात् वह अकेला एक ही वर्तमान है ।

आजकल देश में — परदेश में अनेक देवों की उपासना और भक्ति की जा रही है । परन्तु वास्तव में अग्नि, वायु, इन्द्र, आदित्य, चन्द्रमा आदि सब एक ही परमात्मा के नाम हैं । हम अज्ञानवश उन्हें अलग-अलग देव मानकर उनकी अलग-अलग उपासना करते हैं । उन देवों के अतिरिक्त आज मनुष्यों में भी देव या परमेश्वर बनते जाते हैं । अज्ञान के कारण राम और कृष्ण को परमेश्वर का अवतार मानकर उपासना की ही जाती थी, आजकल तो देवताओं या ईश्वरों की बाढ़-सी आ गई है । कहीं साईं बाबा हैं तो कहीं जय गुरुदेव हैं । कहीं बालयोगेश्वर हैं तो कहीं चीपटानन्द हैं । सब ईश्वर बनकर अपनी उपासना करवाना चाहते हैं । परन्तु विचारणीय यह है कि क्या वैदिक स्वरूप के अनुसार ये लोग ईश्वर कहला सकते हैं ? इन ईश्वरों के अस्वस्थ होने, डरने, थकने, एक स्थान पर रहने के कारण ईश्वर के सदृश मानना सम्भव नहीं लगता । वेद जोरदार शब्दों में कहता है, वह दो नहीं, तीन नहीं, दस नहीं । वह एक है और निश्चय से एक है ।

स सर्वस्मं वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥

—अ० १३।४ (२) १९

वह सबके लिए विशेष रीति से देखता है, जो प्राण लेता है और जो नहीं । जो इसको अकेला एक वर्तमान जानता है उसको यह प्राप्त होता है ।

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥

—अ० १३।४ (२) २०

सब सामर्थ्य उसको ही प्राप्त है। वह (प्रभु) एक अकेला ही है। जो इसको एक ही मानता है उसको सामर्थ्य प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति अनेक देवों की उपासना न करके एक प्रभु की उपासना करता है, उसको अनेक वस्तुएँ मिलती हैं। कौन-कौन-सी वस्तुएँ मिलती हैं? वेद कहता है—

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च,
ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च,
य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥

—अ० १३।४ (३) २२-२४

ज्ञान और तप, कीर्ति, यश, सामर्थ्य, स्थान, ज्ञान का तेज, अन्न और खाद्य, भूत भविष्य के सुख, श्रद्धा, रुचि, स्वर्ग और अपनी धारणशक्ति उसको प्राप्त होती है, जो इस प्रभु को अकेला और सर्वव्यापक जानता है।

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति ।

य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥

—अ० १३।४। (२) २१

इसमें सब देव एकरूप हो जाते हैं। जो इस प्रकार इस अकेले एक देव (ईश्वर) को जानता है, वह ज्ञानी होता है।

अग्नि आदि नाम प्रभु के ही हैं, उसी प्रभु के जो एक है—केवल एक है। ऋग्वेद में कहा गया है—

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।

त्वं वातरुर्णर्यासि शङ्खयस्त्वं पूषा विधतः पाप्ति नु त्मना ॥

—ऋ० २।१।६

हे ज्ञानस्वरूप ! तू द्युलोक का बड़ा प्राणदाता रुद्र है, तू मरुतों का बल है और अन्न का स्वामी भी तू ही है। तू सुखमय प्रेरक शक्तियों के साथ प्राप्त होता है, तू पूषा अपनी शक्ति से ही उपासकों का पालन करता है।

उस एक ही देव को द्रविणोदा, अग्नि आदि नामों से वर्णित करते हुए ऋग्वेद कहता है—

हे ईश्वर ! तू ही पर्याप्त पुरुषार्थ करनेवाले के लिए धन देनेवाला है, तू ही रत्नों का धारणकर्ता सवितादेव है। हे मनुष्यों के पालक ! तू ही भग्न होकर धन का स्वामी होता है, जो घर में तेरी उपासना करता है उसका तू रक्षक होता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर्धो दिव्यः स सुपर्णो गच्छमान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिरश्वानमाहुः ॥

ऋ० १।१६।४६

एक ही सद्बस्तु को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा आदि नाम देते हैं अर्थात् इन नामों से उस एक ही वस्तु का वर्णन होता है।

य एक इत्तमु ष्ठुहि कृष्टीनां विचर्षणिः।

पतिर्जने वृषक्रतुः ॥

—ऋ० ६।४।१६

जो अकेला ही बलवान् कर्म करनेवाला है और मनुष्यों का विशेष द्रष्टा पति है, उसी की स्तुति कर।

य एक इन्द्रव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गोभिरभ्यर्चं आग्निः।

यः पत्यते वृषमो वृष्यावान्त्सत्यः सत्त्वा पुषमायः सहस्वान् ॥

ऋ० ६।२।११

जो बलवान्, शक्तिशाली, तीनों कालों में एक जैसा सत्य, सत्त्ववान्, महाज्ञानी और विजयी शक्ति से युक्त, सबको आश्रय देता है, वह अकेला ही मनुष्यों का पूजनीय है। उसकी इन स्तोत्रों से पूजा कर।

इसी प्रभु को वेद पिता, जनक और भाई कहता है।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥

—अ० २।१।३

वही ईश्वर हमारा पालक और उत्पादक तथा बन्धु है, वही सम्पूर्ण भुवनों को और स्थानों को जानता है तथा जो ईश्वर अकेला ही देवों के नाम धारण करनेवाला है उसी पृच्छा करने योग्य ईश्वर के प्रति सब अन्य भुवन मिलकर जाते हैं।

वह प्रभु सबका पिता, माता, जनक और भाई है। सम्पूर्ण देवों के सभी नाम उसके लिए ही प्रयुक्त किये जाते हैं।

एक ही देव संसार का उत्पादक, पालक, संचालक और नाश करनेवाला है। वह सदा हमारे साथ रहता है। उस महान् स्रष्टा से अपना नाता जोड़कर ही हम उसके निर्माण-कार्य में हाथ बँटा सकते हैं। पृथिवी का कण-कण उसी निर्माता की अपूर्व योजना की गवाही देता है। हमारा जीवन भी तभी सच्चा मानव-जीवन होगा जब हम उस स्रष्टा द्वारा निर्मित इस पृथिवी के सुन्दर रूप को और भी सुन्दर बनाएँगे, मनुष्यता को ईश्वरत्व के पास ले जाएँगे। मनुष्य के भीतर एक ऐसा रूप बसा हुआ है जो बिल्कुल निष्कलंक और सुन्दर है, जो न तो कभी पंदा हुआ है और न कभी मरेगा, न ही उसे कलंकित किया जा सकता है और न ही कोई उसका रूप बदल सकता है। यही ईश्वरीय अंश या भावना है जो मानव-जीवन के निर्माण का सच्चा रूप है। आइए, हम उसका ध्यान करें।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है

इस संसार में ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन वस्तुएँ अनादि और अनन्त हैं। इनमें से जड़ प्रकृति केवल 'सत्' है अर्थात् उसकी सत्ता तो है पर वह चेतन नहीं है। चेतन न होने से उसे न तो सुख मिल सकता है और न दुःख। इसलिए प्रकृति के आनन्द या सुख अनुभव करने का प्रश्न ही नहीं। वह जड़ है। जड़वस्तु सुख-दुःख दोनों का अनुभव नहीं कर सकती। प्रकृति के बाद 'जीव' का नम्बर आता है। 'जीव' की सत्ता भी है और वह चेतन भी है। चेतन होने से उसे सुख या आनन्द भी होता है और दुःख भी होता है पर वह दुःख नहीं चाहता, उसे सुख की—आनन्द की ही कामना रहती है। अब उस आनन्द को वह कहाँ से प्राप्त करे ? प्रकृति में आनन्द नहीं। वह तो जड़ है।

इन दो शक्तियों के अतिरिक्त तीसरी शक्ति है 'ईश्वर'। ईश्वर की सत्ता है अतः वह 'सत्' है। चेतन होने से उसे हम 'चित्' कहते हैं। और क्योंकि वह आनन्द से परिपूर्ण है इसलिए हम उसे 'आनन्द' भी कहते हैं। वह भगवान् सच्चिदानन्द-स्वरूप है।

अब स्थिति यह है कि प्रकृति को जड़ होने से न तो सुख का अनुभव होगा और न दुःख का, अतः उसे आनन्द की आवश्यकता ही नहीं। ईश्वर आनन्द का भण्डार है अतः उसे भी आनन्द खोजने बाहर नहीं जाना है। रहा जीव ! जीव को सुख भी होता है, दुःख भी। परन्तु वह सुख चाहता है, आनन्द चाहता है और उसकी तलाश में भटकता है। वह खोजता रहता है कि किस वस्तु में रस है, किस वस्तु में आनन्द है। संसार की जिन वस्तुओं में रस दीखता है, उन्हीं से चिपट जाता है। परन्तु संसार की वस्तुएँ उसे कुछ देर तक ही रस देती हैं। उनका रस समाप्त होने के बाद फिर उसे पहले की तरह रस की खोज करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए हम एक चींटे का उदाहरण ले सकते हैं। चींटा कितना चञ्चल होता है, लगातार चला करता है—इधर से उधर। एक व्यक्ति उसको इस प्रकार भटकते देख गुड़ की एक छोटी डली उसके सामने फेंक देता है और वह उससे चिपट जाता है। अब वह उसमें बिल्कुल एकाग्र हो जाता है। परन्तु जब वह उस डली की पूरी मिठास को चूस लेता है तब उसे छोड़कर फिर आगे के लिए निकल पड़ता है—उसी आनन्द और सुख की तलाश शुरू कर देता है। मन की भी ठीक यही दशा है। वह भी चञ्चल है। मन ढूँढ़ता-फिरता है कि किस वस्तु में रस है, आनन्द है। उसे संसार में, संसार की जिस वस्तु में आनन्द दीखता है, उसी से चिपट जाता है। ये सांसारिक पदार्थ उसे कुछ देर ही आनन्द देते हैं। रस लेने के

बाद चींटे की तरह उसमें फिर चञ्चलता आ जाती है। रस की तलाश फिर वैसी-की-वैसी हो जाती है। वह लखपति, करोड़पति होना चाहता है। करोड़पति की अभिलाषाएँ और ऊँची हो जाती हैं। डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने बड़े सुन्दर शब्दों में इस तलाश का वर्णन करते हुए लिखा है—“प्यास है तो उसे दूर करने के लिए पानी मौजूद है। आँख है तो देखने के लिए सूर्य मौजूद है। चञ्चलता है, तलाश है तो अखण्ड आनन्द का स्रोत जिसकी तलाश है वह भी मौजूद है।” आगे वे कहते हैं, “बूँद से पूछो, तू किसकी तलाश में है? वह कहेगी—समुद्र की, जो बूँदों का भण्डार है। दीये की लौ से पूछो—तू किसको ढूँढ रही है? वह कहेगी, सूर्य को जो ज्योतियों का स्रोत है। मन से पूछो—तू किस यात्रा में निकला है? वह कहेगा, उस लक्ष्य को पाने के लिए जहाँ पहुँचकर यात्रा की थकान मिट जाती है, जहाँ पहुँचकर आगे चलने की चाह नहीं रहती।” उपनिषदों के ऋषियों के सामने यही प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। ऋषि ने पूछा, ‘ऐ बटोही! तू किसकी तलाश में है? तुझे कहाँ जाना है?’ ऋषि जिज्ञासु से कहता है—“बिना सुख के कोई कुछ नहीं करता, सुख मिलने से ही मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है, इसलिए तुझे ‘सुख’ के जानने की इच्छा करनी चाहिए।” नारद ने कहा, “तो भगवन्! मुझे उस सुख और आनन्द का उपदेश दीजिए।”

ऋषि ने कहा—

यो वै भूमा तत्सुखम् । नाल्पे सुखमस्ति । भूमैव सुखम् ।

भूमा त्वेव त्वया विजिज्ञासितव्य इति ॥

—छान्दोग्य ७।२३।१

अर्थात् ‘यो वै भूमा तत्सुखम्’—जो ‘भूमा’ है, असीम है, निरतिशय है, महान् है, फैला हुआ है, व्यापक है, वही सुख है; ‘न अल्पे सुखमस्ति’ जो अल्प है, ससीम है, परिमित है, क्षुद्र है, अल्प है, उसमें सुख नहीं है। ‘भूमा’ ही सुख है, उसे जानने की इच्छा करनी चाहिए।

ऋषि ने नारदजी को ‘भूमा’ रूप की व्याख्या करते हुए बताया, “जिस परम-शुद्ध अवस्था में आत्मा अन्य वस्तु को न देखता है, न सुनता है, न जानता है वही ‘भूमा’ है। जहाँ आत्मा अन्य वस्तु को देखता है, सुनता है, जानता है, वही अल्प है। जो ‘भूमा’ है वह ‘अमृत’ है, जो अल्प है वह ‘मर्त्य’ है—मरणघर्मा है। यह ‘भूमा’ अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है। या यह कहें कि वह महिमा में भी प्रतिष्ठित नहीं है।”

उपनिषद् ने इस प्रभु के लिए कहा है “रसो वै सः” रसों का रस वही है।

अथर्ववेद में कहा है—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।

तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

—अ० १०।८।४४

वह प्रभु कामनारहित, धीर, धृतिमान्, सर्वज्ञ, अविनाशी, सदाभुक्त, स्वयंभू, आनन्द से तृप्त, कहीं से भी न्यून नहीं, उसी धीर, अजर, सदा नूतन, सर्वव्यापक को जाननेवाला मौत से डरता नहीं है।

इस मन्त्र में प्रभु को 'रसेन तृप्तः' रस से तृप्त है, रस से भरपूर है कहा गया है। क्यों ? क्योंकि 'न कुतश्चनोः' वह किसी प्रकार से न्यून नहीं है। कामना के कारण रस में विधात पड़ता है। कामना कमी की, अल्पता की धोतक है। भगवान् में किसी प्रकार की ऊनता=न्यूनता=कमी नहीं है। उसको जानने और उसके उपदिष्ट साधनों पर आचरण करने से दुःख, मृत्यु और अन्धकार दूर हो जाते हैं, आनन्द, अमृतत्व और प्रकाश की प्राप्ति होती है।

अथर्ववेद में उस प्रभु को आनन्द का स्रोत कहा गया है—

शतं सहस्रमयुतं न्यबुद्धमसंख्येयं स्वस्मिन् निविष्टम्।

तदस्य घनन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत्॥

—अथर्व० १०।८।२४

सैकड़ों, सहस्रों, दशसहस्र, दस करोड़ और इससे भी अधिक आनन्द इस प्रभु में सन्निविष्ट है। जो व्यक्ति उस प्रभु का साक्षात्कार करते हैं वे ही उस आनन्द को प्राप्त करते हैं। अपने उसी आनन्दमय रूप के कारण परमात्मा इस संसार को आनन्द की धाराओं से पूर्ण कर रहा है। एक ओर ऊपर फैला हुआ नीलगगन कभी काले-काले बादलों से आवृत, कभी जगमगाते नक्षत्रों से शोभित आठों पहर अपनी आभा बिखेरता दिखाई देता है। दूसरी ओर जमीन पर दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेतों में प्रसन्नता और आनन्द की धारा बहती हुई दिखाई देती है। कहीं ऊँचे खड़े पहाड़ों की गगनचुम्बी चोटियाँ प्रसन्नता से उचकती दिखाई देती हैं तो कहीं उनपर पड़ी हुई चमकीली रजत की पिघलती धारा-सी नदियाँ आनन्द में उछलती-कूदती दिखाई देती हैं। पवन के झरोकों में, पक्षियों के कलरव में, प्रपातों की झंकार में, बादलों के गर्जन में, झरनों की झर-झर में, हरिणों की छलाँग में, मयूरों के नर्तन में क्या आनन्द की भावना नहीं है ? हरा परिधान धारण किये तरुण अपने रंगविरंगे फूलों से उसी के हास्य को प्रकट कर रहे हैं। आहा ! आनन्द, खुशी और हास्य की मृदु लहरों से क्या यह संसार उमड़ नहीं रहा है ? इसीलिए बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।

—बृह० ३।१।२८

ब्रह्म विज्ञानस्वरूप है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। उसके विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है—

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विनोति कुतश्चन।

—तै० ब्रह्मानन्दवल्ली (३)

जो इस आनन्दरूप ब्रह्म को जानता है, उसे सन्ताप नहीं होता ।

उपनिषद् ने भगवान् का सुन्दर चित्रण करते हुए लिखा है—

तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः ।

प्रमोदः उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा ॥

—तै० २-५

प्रेम उस प्रभु का सिर है । मोद उसका दायीं पक्ष है । प्रमोद बायीं पक्ष है । आनन्द उसका आत्मा है । जो व्यक्ति परमात्मा के इस स्वरूप को समझ लेता है 'तरति शोकमात्मवित्' वह आत्मा को जाननेवाला सम्पूर्ण दुःखों को पार कर लेता है ।

वेद में परमेश्वर को आनन्दमय मानते हुए कहा गया है—

कया नश्चित्वा आ भुवद्भूती सदाबुधः सखा ।

कया शचिष्ठया वृता ॥

—ऋ० ४।३।१।१

सदा से महान् और आश्चर्यकारक ईश्वर आनन्दमय रक्षण के द्वारा और आनन्दमय महाशक्ति के द्वारा और बार-बार सृष्टि-रचनादि कर्म के द्वारा हम सबका मित्र होता है ।

कस्त्वा सत्यो मदानां म'हिष्ठो मत्सदन्धसः ।

बुद्धा चिदा दजे वसु ॥

—य० ३६।५

आनन्दवालों में अत्यन्त पूज्य, सज्जन, हितैषी, त्रिकालाबाधित, सत्यस्वरूप और आनन्दस्वरूप परमेश्वर तुझको आनन्दयुक्त करता है । वह ज्ञानी परमेश्वर दुःख पानेवाले जीव को दृढ़ और शीघ्र नष्ट न होनेवाला मोक्षरूप धन देता है ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं दामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२।१।१

जिसके गर्भ में अनेक तेजस्वी पदार्थ हैं वह परमात्मा सृष्टि के पूर्व था । वह सब बने हुए संसार का एक ही स्वामी प्रसिद्ध है । उसने पृथिवी और इस धुलोक को भी धारण किया है । उस आनन्दस्वरूप एक देव की ही यज्ञ के द्वारा हम उपासना करें ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष्यं यस्य देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२।१।२

जो आत्मिक तेज और बल देता है, सम्पूर्ण देव जिसके शासन में रहते हैं । जिसके आश्रय में रहना अमरपन है और जिससे दूर रहना ही मृत्यु है, उस आनन्दस्वरूप प्रभु की सेवा में हम आत्मार्पण करते हैं ।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वेन इंद्राज्ञा जगतो बभूव ।

य ईशो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२।३

प्राण धारण करनेवाले, निमेषोन्मेष करनेवाले संसार का अपनी महिमा के कारण इरमात्मा एक ही राजा है। इस जगत् के दो पाये और चौपाये प्राणियों पर जो अकेला ही शासन करता है उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की यज्ञ द्वारा हम सबको सना करउपानी चाहिए।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहहुः ।

येत्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२।४

ये बर्फ से ढके पर्वत और पृथिवी के साथ समुद्र जिसकी महिमा की प्रशंसा कर रहे हैं और जिसके बाहू दिशा-उपदिशाओं में रक्षण का कार्य कर रहे हैं, उस आनन्द-स्वरूप परमात्मा की ही उपासना यज्ञ द्वारा हम सबको करनी चाहिए।

इस सूक्त में परमात्मा के लिए 'क' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'क' शब्द के अर्थों में एक अर्थ आनन्दस्वरूप भी है और इसके साथ 'देवाय' शब्द भी आया है जिसका अर्थ है चाहने योग्य। यह परमात्मा अपने आनन्दमय स्वरूप के कारण सदा चाहने योग्य है। उसकी उपासना हमें आत्मार्पण के द्वारा करनी चाहिए। इस सूक्त में अन्य भी मन्त्र आये हैं जिनमें 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'—उस चाहने योग्य आनन्दस्वरूप परमेश्वर की आत्मार्पण द्वारा हमें पूजा करनी चाहिए, यह बात बताई गई है।

अथर्ववेद में भी प्रभु को आनन्दस्वरूप बतलाया है—

यस्य द्यौरवी पृथिवी च महौ यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।

यस्यासौ सूरौ विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—अ० ४।२।४

जिसके वश में बड़ा द्युलोक है और बड़ी पृथिवी जिसके अधीन है और इस विस्तृत अन्तरिक्ष को जिसने वश में किया हुआ है और जिससे फैला हुआ और रचा हुआ यह सूर्य महत्त्व के साथ चमकता है उस आनन्दस्वरूप देवता की हम आत्मार्पण द्वारा पूजा करें।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता ।

सखा सहया समिध्यसे ॥

—ऋ० ८।४३।१४

हे अग्ने ! प्रकाशयुक्त जीव ! सचमुच तू प्रकाशस्वरूप, मेधावी—चित्स्वरूप, सत्-स्वरूप, आनन्दमय तथा आनन्दयुक्त स्नेही परमेश्वर से युक्त होकर, अग्रणी, मेधावी—ज्ञानी, सद्गुणविशिष्ट तथा परमात्मा के समान गुणोंवाला अर्थात् आनन्दमय होकर शोभित होता है।

पूज्य स्वामी वेदानन्दजी महाराज ने दूसरा भाव लिखा है—“जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रदीप्त की जाती है, जिस प्रकार विद्वान् की सत्संगति से दूसरा मनुष्य भी विद्वान् हो जाता है, जैसा सज्जनों के मेल से दूसरे व्यक्ति भी सज्जन बन जाते हैं उसी प्रकार परमात्मा की सत्संगति से जीवात्मा में ज्ञान, आनन्द आदि अनेक उत्तम गुणों का संचार होता है, अतः जीवन में आनन्द के लिए आनन्दस्वरूप का ध्यान आवश्यक है।

मैं आचार्य अभयदेवजी के शब्दों में प्रभु से यही प्रार्थना करूँगा कि “इस सर्व-व्यापी हास्य के स्रोत, हे आनन्द के खजाने ! आनन्दमय प्रभो ! तेरे अनगिनत दानों में से मैंने आज इस एक हँसी और आनन्द के दान को पहचाना है और अपनाया है। हे दाता ! इससे मुझे कभी विमुक्त मत करना। मुझे अयोग्य देख और सब दान भले ही मुझसे छीन लेना परन्तु हे करुणानिधान ! इस हँसी के, आनन्द के दान को तो अपने स्मृति-चिह्न के तौर पर ही सही मेरे पास रहने देना। यही नाथ ! एक प्रार्थना है। इस लोक में, परलोक में, जवानी में या बुढ़ापे में, वर्षा में या ग्रीष्म में, दिन में या रात में सदैव ही यह तेरा हास्य या आनन्द का उपहार-पुष्प इस तुच्छ पौधे पर विकसित रहे, कभी भी म्लान न हो। हे प्रभो ! कभी भी म्लान न हो।”

ईश्वर निराकार है

निराकार शब्द का अर्थ है—आकार, रूपरंग आदि से रहित होना। ईश्वर को माननेवाले को आस्तिक कहते हैं और न माननेवाले को नास्तिक। आस्तिकों के भी दो भेद हैं। इनमें से एक ईश्वर को साकार मानते हैं और दूसरे निराकार। साकार उपासक प्रभु की मूर्ति बनाते हैं और उसकी प्रतिष्ठा करके उससे नाना प्रकार की वस्तुओं की याचना करते हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि ईश्वर को साकार मानने से क्या हानि है ? इस विषय में हमें एक पुरानी कहानी याद आ रही है। किसी गुरु के दो शिष्य थे। गुरु ने दोनों को प्रभु की सर्वव्यापकता समझाते हुए कहा कि प्रभु को सर्वव्यापक मानने से हम पापों से बच सकते हैं। सर्वव्यापकता समझने के बाद दोनों को एक-एक फूल दिया और एक-एक चाकू और कहा कि इसे ऐसे स्थान पर ले जाओ जहाँ कोई न देख रहा हो। एक ने किवाड़ बन्द किये और फूल काटकर गुरु की सेवा में पहुँच गया परन्तु दूसरा बिना काटे ही ले आया। इस दृष्टान्त का भाव यह है कि प्रभु को सर्वव्यापक समझने-वाला उसे सर्वत्र पाएगा और वह पापों से बच जाएगा। दूसरा जो प्रभु को एक-देशीय मानकर चलेगा वह पापों से बचने की आवश्यकता अनुभव ही न करेगा

और सर्वव्यापकता के हटते ही वह पाप करने से हिचकिचाएगा नहीं। साकार वस्तु एकदेशीय होती है। परमेश्वर को साकार समझते ही हम उसकी सर्वव्यापकता को समाप्त कर देते हैं। यदि वह साकार प्रभु गोरखपुर में रहेगा तो दिल्ली और कानपुर खाली रहेंगे और वहाँ अपराध करने पर भी उसे कोई देखनेवाला नहीं होगा। उस दशा में प्रभु पूर्ण न्यायकारी भी नहीं रह सकेगा। न्यायकारी तभी होगा जब वह सर्वत्र होगा और सर्वज्ञ तभी होगा जब सर्वव्यापक होगा। साकार सर्वव्यापक हो नहीं सकता, अतः प्रभु को निराकार मानना पड़ेगा।

वेद कहता है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः ।

हिरण्यगर्भं इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥

—य० ३२।३

(यस्य) जिसका (महत्) महान् (नाम) प्रसिद्ध (यशः) यश है (तस्य) उस परमात्मा की कोई (प्रतिमा) प्रतिमा=मूर्ति (न अस्ति) नहीं है। (हिरण्यगर्भं इति एषः) हिरण्यगर्भं इत्यादि मन्त्रों द्वारा (मा मा हिंसीत् इति एषा) 'मा मा हिंसीत्' इस मन्त्र से और (यस्मात् न जातः) 'यस्मात् न जातः' इस मन्त्र से उसका वर्णन होता है।

एक दूसरे मन्त्र में इसे बहुत पुराना, सबसे पहला देव बतलाया गया है और कहा गया है कि वह महान् आकाश में स्थित है और न इसके हाथ हैं और न पाँव, और न सिर आदि अवयव हैं अर्थात् यह अशरीरी, निराकार है और सबके अन्दर गुप्त अवयव व्याप्त है। शरीररहित होने से यह निरवयव है और इसी कारण यह सबमें व्याप्त है। वह परमेश्वर अव्यक्त है। उसके प्राप्त करने का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि बलवान्, आत्मिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ही इसे प्राप्त कर सकता है। 'नाममात्मा बलहीनेन लभ्यः' यह आत्मा बलहीन को प्राप्त नहीं होता। दुर्बलों को आनन्दस्वरूप की प्राप्ति कहाँ? उसके लिए तो दुःख, दरिद्रता और हीनता ही रहती है।

वेद में कहा है—

स ज्ञायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनी ।

अपादशीर्षा गुहमानो अन्तापोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥

—ऋ० ४।१।११

(सः प्रथमः पस्त्यासु जायत) वह पहले प्रजाओं में हुआ है (अस्य महः रजस बुध्ने योनी) वह इस महान् अन्तरिक्ष के मूल स्थान में होता है। यह (अपादशीर्षा) पाँव सिर आदि के अवयवों से रहित है (अन्ता गुहमानः) अन्दर गुप्त है। यह (वृषभस्य नीळे) वीर्ययुक्त पुरुष के स्थान में (आ पोयुवानः) संघटना का कार्य करता है। एक अन्य मन्त्र में बतलाया गया है—

सर्वे निमेषा जजिरे विद्युतः पुष्पादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥

—य० ३२।२

विशेष तेजस्वी और (पुष्पात्=पुर्+उषात्) सृष्टि में पूर्ण व्यापक परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) निमेष आदि काल के अवयव (जजिरे) होते हैं। कोई भी (एनं) इस परमात्मा का (न ऊर्ध्वं) न ऊपर (न तिर्यञ्चं) न तिरछा (न मध्ये) न मध्य भाग में (परिजग्रभत्) पूर्णता से ग्रहण कर सकता है अर्थात् काल के सब अवयव और सब गति उसी तेजस्वी सर्वव्यापक परमात्मा से प्रकट हो रही है। उस परमात्मा का न ऊपर है, न नीचे है, न मध्य है अर्थात् वह निराकार है।

अन्तरिच्छन्ति तं जने द्दं परो मनीषया ।

गृष्णन्ति जिह्वाया सप्तम् ॥

—ऋ० ८।७२।३

जो बुद्धि से परे है, उस रुद्र प्रभु को ज्ञानी मुमुक्षु आत्मा के भीतर चाहते हैं—
खोजते हैं। जैसे फल को जिह्वा से ग्रहण करते हैं।

यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के, जो ईशोपनिषद् के नाम से विख्यात है, ८वें मन्त्र में कहा है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमन्नमस्ताविरं शुद्धमपापविद्धम् ।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्यायातभ्यतोऽर्थात् व्यवधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

—यजु० ४०।८

जो ब्रह्म शीघ्रकारी, तेजस्वी, सर्वशक्तिमान्, स्थूल शरीर से रहित है, धाव, छिद्र तथा नस-नाड़ी के बन्धन से रहित, अतः सूक्ष्मशरीर-रहित है, परम पवित्र है, वह कभी पाप से विद्ध नहीं होता। वह कवि है, क्रान्तदर्शी है, विद्वान् है, वह मनीषी दुष्ट और पापियों का तिरस्कार करनेवाला है, स्वयंसिद्ध, अपने-आप होनेवाला—अनादि है। वह अनादिकाल से पदार्थों को यथार्थरूप में, जो पदार्थ जैसे होने चाहिए थे, उस रूप में निर्मित करता है, व्यवस्थित करता है।

इस मन्त्र में परमेश्वर को अकायम्=शरीररहित कहा गया है। उसके पास हमारे जैसा शरीर नहीं है; वह क्रियावान् है परन्तु कायवान् नहीं है। वह शरीर और शरीर के उपकरणों के बिना ही विश्व का निर्माण, पालन-पोषण और संहार करता है। सगुण भगवान् के उपासक तुलसीदास ने भगवान् का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

बिनु पगु चलै, सुनं बिनु काना,
कर बिनु करम करै विधि नाना ।
छाननरहित सकल रस जोषी,
बिनु बाणी बकता बड़ जोषी ।

तत्र बिन्दु परस्मै नयनं बिन्दुं देखा,

ग्रह इन्द्रान् बिन्दुं वासं श्रुतेषां ॥

उसे 'अन्नम्' भी कहा है। जब शरीर ही नहीं तो अन्न का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ? प्रभु तो अशरीरी है, अतः उसके अन्न हो ही नहीं सकते। इस मन्त्र में 'अन्नम्' के बाद 'अस्नाविरम्' शब्द से उसकी विशेषता कही गई है। 'अस्नाविरम्' का अर्थ है प्रभु नस-नाड़ी के बन्धन से रहित है। जब शरीर ही नहीं तो स्नायु आदि शरीर के आधार कहाँ से होंगे ?

। श्वेताश्वतर उपनिषद् में उसके रूप का बड़ा सुन्दर वर्णन है—

सहस्रशोर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽप्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

—श्वेता० ३।१४

वह पुरुष सहस्रों सिरोंवाला, सहस्रों आँखोंवाला, सहस्रों पाँवोंवाला है। वह हाथ से ब्रह्माण्ड को सब तरफ से घेरे हुए है फिर भी उसकी दस अंगुलियाँ दूर खड़ी हैं। घेरने से तो दसों अंगुलियाँ भर जानी चाहिएँ, परन्तु यह ब्रह्माण्ड उसके लिए इतना तुच्छ है कि इसे घेरकर भी उसके दोनों हाथों की दसों अंगुलियाँ मानो खाली रह जाती हैं।

अगले मन्त्र में कहा है—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

—श्वेता० ३।१६

सब ओर उसके हाथ-पैर हैं, सब ओर आँख, सिर, मुख हैं, सब ओर कान हैं। संसार में सबको घेरकर वह खड़ा है—फिर कहाँ कौन उससे बचकर किंचित निकल जाएगा ?

जब यहाँ हाथ, पैर, आँख, कान आदि से युक्त उसे कहा गया है तो वह निराकार कैसे हुआ ? हाथ, पैर, आँख, कान आदि गुण का कार्य उससे हो रहा है। उसके हाथ-पैर आदि वास्तव में हैं नहीं, अतः अपनी बात को स्पष्ट करती हुई यह उपनिषद् कहती है—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

—श्वेता० ३।१७

सब इन्द्रियों के गुण उसमें भास रहे हैं, परन्तु सभी इन्द्रियों से वह रहित है। सबका वह प्रभु है, स्वामी है, इसलिए सभी के लिए वह महान् शरण है, आश्रयस्थान है, सहारा है।

उपनिषद् आगे कहती है—

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

—श्वेता० ३।१६

वह परमपुरुष हाथ-पैररहित है, संकल्प से ही वेगवान् और ग्रहण करनेवाला है । वह बिना आँखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है । जानने योग्य जो कुछ भी है, उसे तो वह जानता है, परन्तु उसे जाननेवाला कोई नहीं, उसी को आदिम महान् पुरुष कहते हैं ।

अपादिन्द्रो अपादिग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इविह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥

—ऋ० ८।६६।११

(इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण प्रभु (अपात्) निराकार है । (अग्निः) चेतन जीव (अपात्) निराकार है और (विश्वे देवा अमत्सत) सब इन्द्रियाँ या सूर्य-चन्द्रादि देव सुख के साधन हैं । (वरुण इत् इह क्षयत्) सबसे उत्तम भगवान् सर्वत्र व्यापक है (आपः तम् अभ्यनूषत शिश्वरीः इव वत्सम्) सब स्तुतियाँ उसको प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार बर्धक शक्तियाँ बच्चे को प्राप्त होती हैं ।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ईश्वर और जीव दोनों निराकार तो हैं पर ईश्वर सर्वव्यापक है और जीव एकदेशीय ।

आइए, अब हम उस निराकार प्रभु का गुणगान करें ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधिष्ठति ।

स्वर्गस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अर्थात्—

भूत भविष्यत् वर्तमान का,

जो प्रभु है अन्तर्यामी ।

विश्व व्योम-सा व्याप्त हो रहा,

जो त्रिकाल का है स्वामी ।

निर्विकार आनन्दकन्द है,

जो कैवल्यरूप सुखधाम ।

उस महान् जगदीश्वर को है,

अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ॥

ईश्वर निर्विकार है

निर्विकार शब्द का अर्थ है, विकार से रहित । विकार का मतलब है जो वस्तु जिस रूप में है, उस वस्तु में परिवर्तन और उस परिवर्तन का भी खराबी की ओर,

विकृति की ओर जाना विकार है। ईश्वर इस विकार से रहित है, निर्विकार है। प्रभु तो सर्वव्यापक है; अंजर, अमर और अभय है, अतः उसमें विकार सम्भव ही नहीं। निर्विकार और निडरता का आपस में सम्बन्ध है। विकार दोष को कहते हैं। दोष कहाँ होगा ? जहाँ अल्पज्ञता होगी, वहाँ दोष की सम्भावना होती है। जहाँ दोष या अपराध होता है; वहाँ दुःख की सम्भावना से भय होता है। ईश्वर सर्वज्ञ है। जो सर्वज्ञ होता है, वह सर्वशक्तिमान् होता है। जो सर्वशक्तिशाली होता है वही आनन्द प्राप्त कर सकता है। जो आनन्दस्वरूप है उसे भय कहाँ ? संसार में विकार भय के कारण हैं। भय संहारक है, निर्भयता जीवनदात्री। भय शिथिल कर देनेवाला विष है, निर्भयता जीवनदायक अमृत है। भय किकर्तव्य-मृदता, निराशा और मृत्यु को जन्म देता है और निर्भयता, प्रसन्नता, शक्ति और जीवन को। भय ने कभी किसी की कोई सहायता नहीं की, निर्भयता ने अनगिनत ऐसे व्यक्तियों के जीवन बचाये हैं, जो मृत्यु के मुख में गये हुए-से प्रतीत होते थे। निराशा और विकार का समागम भय को जन्म देता है। भय उस कायर शत्रु के समान है जो पीठ पर वार करता है। भय डाकू नहीं, चोर है जो आपके सोये होने पर आपकी सम्पत्ति का हरण करता है। इस भय को दूर करने के लिए वेद ने प्रभु के निर्विकार और अभयस्वरूप का वर्णन किया है और उसकी उपासना तथा उसके गुणों को अपने में धारण करने का उपदेश दिया है। वेद कहता है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विबुस्त इमे समासते ॥

—ऋ० १।१६४।३६

जिस परम महान् भगवान् में, सम्पूर्ण देव-पदार्थ अपने-अपने अनुसार रहते हैं, जिस सर्वव्यापक, विकाररहित भगवान् में सब देव—सूर्य-चन्द्र भूमि आदि आधेय रूप से स्थित हैं, उस परब्रह्म परमेश्वर को जो नहीं जानता है, वह वेद से क्या करेगा, अर्थात् उसका वेदाध्ययन निष्फल है। जो मनुष्य उस प्रभु को जान लेते हैं, वे ही इस ब्रह्म में भली प्रकार स्थित होते हैं।

इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि विकाररहित परमेश्वर में सूर्य, चन्द्र, भूमि आदि देव स्थित हैं, अर्थात् इस संसार में तो विकार आते हैं, क्योंकि जब प्रकृति में विकृति आती है तब यह विकारवान् संसार बनता है परन्तु इस विकृतिवाले संसार का आधार विकाररहित प्रभु है। हम जब अपने विषय में, संसार के विषय में और संसार के आधार प्रभु के विषय में विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि सारे संसार में एक ही तत्त्व हम सबका आधार है—एक ही जीवन, एक ही सत्य वर्तमान है। हम सब उसी दैवी प्रवाह में विद्यमान हैं जो ईश्वर तक हमें ले जाता है। जब हम उस दैवी तत्त्व का अनुभव करने लगेंगे तब हमारे जीवन में अलौकिक परिवर्तन होने लगेगा। तब हममें पवित्रता, शुद्धता

और स्वच्छता का प्रवेश होगा। जब हम उस अनन्य जीवन से अपनी एकता का अनुभव करेंगे तो हममें अपूर्व धैर्य, आश्वासन और निश्चय प्राप्त होगा और उस समय हम भय से दूर और दूर होते जाएंगे। इसीलिए ऋग्वेद में कहा गया है—

सुगन्धं नो बाजी स्वश्वं पुंसः पुत्रां उत विश्वापुत्रं रयिम्।

अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान्॥

—ऋ० १।१६२।२२

धनधान्य का स्वामी शक्ति-सम्पन्न प्रभु हमें गौ आदि धन, सुन्दर अश्वादि सम्पत्ति, और बलवीर्य-सम्पन्न पुरुषार्थी सन्तान तथा सब प्रकार की पुष्टि देनेवाला धन देवे, नाना दानयुक्त, व्यापक विज्ञानी प्रभु हमें राज्य दे, निर्विकार एवं अखण्डित, परमात्मा हमें पापरहित निर्दोष करे।

एक और मन्त्र में निर्विकार प्रभु का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अदितिनं उरुष्यत्वदितिः शर्मं यच्छतु।

माता भिन्नस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥

—ऋ० ८।४७।६

अखण्डनीय निर्विकार परमात्मा हमें उन्नत करे। निर्विकार जगदीश्वर हमें कल्याण—ऐहिक तथा आमुष्मिक सुख प्रदान करे। वह निर्विकार परमेश्वर सबसे स्नेह करनेवाले धनी का और न्यायकारी धार्मिक राजा का मान करनेवाला है। हे विद्वानो ! तुम्हारे लिए उसकी निर्दोष, पापरहित रक्षाएँ होवें तथा उसकी प्रीतियाँ तुम्हारे लिए अच्छे प्रकार से अर्थसाधिका हों।

इन मन्त्रों में निर्विकार प्रभु से धन-दौलत, आयु, यश और कीर्ति मांगी गई है। ईश्वर इन वस्तुओं को तभी देगा जब हम शक्ति के उस दैवीय प्रवाह की ओर अपने मन-मन्दिर के द्वार पूरी तरह से खोल देंगे। जब-जब मनुष्य दुराचरण की ओर प्रवृत्त होता है, जब-जब वह सत्यमार्ग से भ्रष्ट होकर असत्यमार्ग की ओर उन्मुख होता है, जब-जब हम नीचता एवं बेईमानी करते हैं, तब-तब हम सर्वशक्तिमान् निर्विकार संता से अपने को दूर कर लेते हैं और उसी समय सभी प्रकार के सन्देह हमपर छा जाते हैं और हम उनसे घिरकर अपना सर्वनाश कर लेते हैं। उस समय हम उस असहाय और एकाकी बालक की भाँति हो जाते हैं, जो घोर अन्धकार में भटक रहा होता है और जिसे रोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता, अतः यदि निर्भय बनना चाहते हो तो प्रभु के निर्विकार स्वरूप का ध्यान करो और स्वयं भी निर्भय बनो।

प्रभु अभय है

प्रभु सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिमान् है, वह सर्वव्यापक है, अतः उसके लिए भय का कोई प्रश्न ही नहीं। भय तो हमें तब होता है जहाँ हमें आगे आनेवाली परिस्थिति का ज्ञान नहीं होता और ज्ञान होने पर हम अपने को उस परिस्थिति से निवटने में असमर्थ समझते हैं। परमेश्वर को सभी स्थानों और कालों का स्पष्ट ज्ञान होने से उसे भय कहाँ सतायेगा ? अथर्ववेद १।२१।१ में कहा गया है—

स्वस्तिदा विशां पतिवृत्रहा विमृधो वशी ।

वृषेन्द्रः पुरएतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥

कल्याण देनेवाला प्रजापति, अज्ञान एवं पापनिवारक परमेश्वर, हिंसकों को वश में रखनेवाला, शक्तिशाली, संसार का रक्षक, निर्भय करनेवाला, निर्भय, अभय सकल सामर्थ्य-सम्पन्न प्रभु सदा हमारे समक्ष रहे ।

ऋग्वेद २।२७।१४ बतलाता है—

अदिते मित्र वरुणोत्तमूळ यद्वो वयं चक्षुमा कच्चिदागः ।

उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमित्राः ॥

हे निर्विकार ! अतः सर्वश्रेष्ठ, प्रीति करने योग्य परमात्मन् ! (वयं यत् कच्चित् वः आगः चक्षुम) हमने जो कोई आपका अपराध किया हो, उसकी शुद्धि कर दे । हे अविद्यान्धकार-विनाशक इन्द्र ! (अभयं उरु ज्योतिः अश्याम्) तुझ अभय महान् प्रकाशस्वरूप को हम प्राप्त करें जिससे दीर्घ अन्धकार हमें न प्राप्त हो ।

ऋग्वेद ३।३०।५ में कहा गया है—

उताभये पुरुहूत अबोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।

इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृष्णा मघवन् काशिरिक्ते ॥

अनेक व्यक्तियों से स्तुति करने योग्य प्रभो ! अद्वितीय, तीनों लोकों में वर्तमान, अज्ञाननिवारक, तूने कल्याण करनेवाले एवं यश प्रदान करनेवाले वेद-मन्त्रों से अपने अभयस्वरूप के विषय में दृढ़ उपदेश किया ही है। हे लोकधारक प्रभो ! तू इन असंख्य लोक-लोकान्तरों को धारण करता है। हे अनेक महिमासम्पन्न ! यह सब तेरे स्वरूप का प्रकाश ही है ।

अन्धकार और व्याकुलतामयी रात्रियों से मनुष्य घिरा हुआ है। संसार में जिधर नजर दौड़ाते हैं उधर भय-ही-भय उसे दिखाई देते हैं। रोग-भय, मृत्यु-भय, धननाश का भय, निर्बल हो जाने का भय, नौकरी छिन जाने का भय, अपमान-भय, पतन-भय, दूसरे के अप्रसन्न होने का भय, चुनाव हार जाने का भय, पद न मिलने की चिन्ता । परन्तु इन मन्त्रों में बतलाया गया है कि परमेश्वर के ज्ञान

से सांसारिक कष्ट मनुष्य को भयभीत नहीं कर पाते। उस प्रभु ने इन लोक-लोकान्तरों का निर्माण कर अपने अभयस्वरूप को लोगों के सामने रखा है। जो प्रभु के इस स्वरूप का दर्शन कर लेते हैं, उन्हें संसार के कष्ट, दुःख और चिन्ताओं का भय नहीं रहता। स्वामी दयानन्द और श्रद्धानन्द के जीवनों को पढ़-सुन, चिन्तन कर और परमात्मा के अभयस्वरूप से अपना सम्बन्ध स्थापित कर। जितना समीप पहुँचेगा उतना ही आत्मा में बल आएगा। हे जीव ! तू पराजित और भयभीत होकर कहाँ पड़ा है ? तुझमें संसार की अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है। तेरे सामने प्रभु का वह तेजस्वी और निर्भीक रूप चमक रहा है, फिर तुझे दुःख कहाँ ? फिर तुझे भय कहाँ ? तेरे हृदय में स्वयं भगवान् बस रहे हैं, तू क्यों डरता है ? तू किस कार्य से भयभीत है ? तू उठ ! और अपना मार्ग देख। हे भय से डरे हुए, क्लेशों से सताए हुए मानव ! तू अपने बन्द किवाड़ों को खोलकर देख कि चारों ओर जो तुझे भय, चिन्ता और दुःख दिखाई दे रहे थे वे अब कहाँ हैं ? अरे, यह तो भगवान् का जगत् है जो कि आनन्द से उत्पन्न होता है, आनन्द में स्थित है और आनन्द में ही लीन होता है। यहाँ भय और दुःख का कहाँ स्थान है ? स्वामी अभयदेव जी आचार्य ने ठीक ही लिखा है "नानाविध भयों से त्रासित ! तू क्यों हर समय क्षण-क्षण में अनिष्ट आशंका से संकुचित हुआ रहता है ? एक बार उठकर क्यों नहीं देख लेता कि इस घर में अपना ही अपना है, यहाँ भय कैसा ? यहाँ तो त्रिकाल में भी किसी का अकल्याण कैसे हो सकता है ? फिर तू इस परम कल्याणमय शासन में क्यों नहीं छोती निकालकर निर्भय होकर फिरता है... अरे मूर्ख ! जिसकी सर्वशक्तिमती माता हर समय जाग रही है, उसे कैसी फिक्र, कैसी चिन्ता ?"

अतः हमें निराशा के काले बादलों पर अपनी नजर न रखकर आशा और निडरता की सुगन्धभरी ऊषा का दर्शन करना चाहिए। चिन्ता की आदत छोड़कर समुज्ज्वल भविष्य का ध्यान करो। यह अभयस्वरूप प्रभु के ध्यान से ही सम्भव है। आइए, हम उस ओर कदम बढ़ाएँ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। सर्वशक्तिमान् का तात्पर्य यह नहीं कि ईश्वर जो चाहे वह कर सकता है। सर्वशक्तिमान् का मतलब है कि वह अपने नियमों में रहता हुआ, बिना किसी की सहायता के रचनात्मक या विनाशात्मक कार्य कर सकता है। वेद में ईश्वर को सर्वशक्तिमान् माना गया है। मन्त्र देखिए—

अग्ने सहलाक्ष शतमूर्धच्छतं ते प्राणाः सहलं व्यानाः ।

त्व साहलस्य राय ईशिषे, तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥

—यजु० १७।७१

हे (सहलाक्ष) अनन्त नेत्र और (शतमूर्धन्) अनन्त शिर-शक्तिसम्पन्न (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (ते प्राणाः शतम्) तेरे पास जिलाने के अनन्त उपाय हैं तथा (ते व्यानाः) तेरी मारक शक्तियाँ (सहलं) सहस्रों हैं (स्वं साहलस्य रायः ईशिषे) तू अनन्त ऐश्वर्यों का स्वामी है (ते तस्मै वाजाय स्वाहा विधेम) हम तेरी उस शक्ति का मन, वाणी और कर्म से आदर करें ।

इस मन्त्र में परमेश्वर को अनन्त नेत्रोंवाला और अनन्त शिर-शक्तिवाला बतलाया गया है । ब्रह्मतत्त्व क्या है ? इसका उल्लेख करते हुए कहा है—

विरवतश्चक्षुस्त विरवतोमुखो विरवतोबाहुस्त विरवतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रंर्धावाभूमौ जनयन् देव एकः ॥

—यजु० १७।१६

जिसकी आँखें सर्वत्र हैं अर्थात् जो सदा-सर्वत्र प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति को देख रहा है और जिसके मुख सर्वत्र विद्यमान हैं, जिसकी भुजाएँ सर्वत्र अपना कार्य कर रही हैं । वह बाहु के द्वारा कर्मानुसार जीवों को गति देता है । वह प्रभु ही धुलोक और पृथिवीलोक को उत्पन्न करता है ।

इस विशाल विश्व पर आप दृष्टिपात कीजिए और उसकी तुलना प्रभु से कीजिए तो पता लगेगा कि यह सारा संसार तो केवल उसके एक अंग में है । वह ब्रह्माण्ड से भी बहुत परे व्यापक है, निराकार है और इसी कारण से सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सारे लोकों का आधार है । वह अनन्त है । चींटी तो हाथी का अन्त पा सकती है पर मनुष्य उसका अन्त नहीं पा सकता ।

सचमुच, हमारी आँख बहुत छोटी है । उसकी आँख बड़ी है । जहाँ तक वह देखता है, वहाँ तक हम कभी नहीं देख सकते । इसीलिए ऋग्वेद १।५२।१२ में उसकी दर्शनशक्ति का वर्णन करते हुए बताया है—

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धूषन्मनः ।

चक्षुषे भूमिं प्रतिमानमोजस्तोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥

हे ईश्वर ! (अस्य रजसः व्योमनः पारे) इस अन्तरिक्ष और आकाश के परे (स्वभूति ओजा) अपनी महिमा के बल से युक्त तथा (धूषन्मनः) दृढ़ मन से युक्त तू (अवसे) हमारी रक्षा के लिए (भूमिं) भूमि की (चक्षुषे) रचना करता है । तू (ओजसः) शक्ति का (प्रतिमानं) नमूना हुआ है तू (अपः) अन्तरिक्ष तथा (दिवम्) धुलोक में (परिभूः) व्यापक और (स्वः) प्रकाशस्वरूप छी में (आ एषि) सर्वत्र प्राप्त है ।

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम् ।

तदस्य धनन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत् ॥

—प्र० १०।८।२४

(शतं सहस्रम्) सौ सहस्र (अयुतं) दश सहस्र (न्यर्बुदं) दस करोड़ और (असंख्येयं) असंख्यात (स्वं) शक्ति, आत्मिक बल (अस्मिन् निविष्टं) इस ब्रह्म में हैं (तत्) उस परमेश्वर को (अभिपश्यतः) भली प्रकार साक्षात्कार करनेवाले (अस्य) महात्मा को (धनन्ति) यह प्राप्त होती है। (तस्मात्) उस अनन्त सामर्थ्य से (एषः देवः) यह दिव्यगुण-सम्पन्न प्रभु (एतत्) इस संसार को (रोचते) प्रकाशित करता है।

यह मन्त्र बतलाता है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है और उस अनन्त जीवन से हमारी एकता है। हम परमपिता परमात्मा से दूर नहीं हैं। उसकी छत्रछाया हमपर सदा विद्यमान रहती है, हमें अपूर्व धैर्य, आश्वासन और निश्चय प्राप्त होता है। हमें विश्वास हो जाता है कि हम आकस्मिक संयोगों और किस्मत के गुलाम नहीं, हम उनका संचालन करनेवाले हैं, उनके स्वामी हैं। जहाँ और जब प्रभु के इस सर्वशक्तिमान् स्वरूप की झलक हमें मिल जाती है, जब हमें यह ज्ञान होने लगता है कि सर्वशक्तिमान् प्रभु से हमारी एकता है, तब जहाँ हम पापों से बचते हैं, वहाँ कभी किसी से भयभीत नहीं होते। सन्त कवि दूलनदास ने प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता का ध्यान कर लिखा है—

सुनत चिकार पिपीलिका, ताहि रटहु मन माँहि ।

‘दूलनदास’ विस्वास भजि, साहिब बहिरा नाँहि ॥

तुम उस सर्वशक्तिशाली प्रभु का नाम सदा रटा करो जो चींटी की भी घात-पुकार सुन लेता है। तुम उसे विश्वासपूर्वक भजो, वह जरूर सुनेगा। हमारा घटघटवासी प्रभु बहुरा नहीं है।

दादूदयाल ने लिखा है—

जिहिं घट दीपक ईश का, तिहिं घट तिमिर न होइ ।

उस उजियारे जोति के, सब जग देखे सोइ ॥

जिस घट के अन्दर सर्वप्रकाशक प्रभु का ज्योति-दीपक जल रहा है, वहाँ कभी अज्ञान का अन्धकार प्रवेश नहीं करता, उस परम ज्योति के प्रकाश में सारा जगत् दृष्टिगोचर होता रहता है।

ऋग्वेद १०।१२।१० में बतलाया गया है—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्यु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

प्रजा के स्वामिन् परमेश्वर! इन सब जगत् के पदार्थों पर (त्वदन्वः) तुझसे भिन्न दूसरा कोई भी (न परिबभूव) स्वामित्व नहीं रखता है। (यत् कामाः) जिन इच्छाओं को धारण करते हुए हम सब (ते जुहुमः) तेरा यज्ञ करते हैं, (तत् नः

अस्तु) वह हम सबको प्राप्त हो और हम सब (रथीणां पतयः) धनों के स्वामी बनें।

ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में बतलाया गया है “परमात्मा में अनेक शक्तियाँ हैं; कुछ का ज्ञान मनुष्य को है, कुछ का आगे होगा, परन्तु उनका अन्त पाता तो सम्भव नहीं।”

न ते अन्तः शवसो घायस्य वि तु बावधे रोदसी महित्वा।

आ ता सूरिः पूरति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती॥

—ऋ० ६।२६।५

हे जगदीश्वर ! (ते अस्थ शवसः अन्तः न घायि) तेरी इस शक्ति का अन्त किसी से नहीं पाया जाता (तु) और (रोदसी) बाबापृथिवी को (विबावधे) विशेष रीति से बाँधता है अर्थात् बिना किसी सहारे के आकर्षण-शक्ति द्वारा उनको स्थिर रखता है, गिरने नहीं देता। तेरी (ता ऊतीः) उत रक्षाओं को (समीजमानः) भली प्रकार प्राप्त करता हुआ और (तूतुजानः) शीघ्र तदनुसार अनुष्ठान करता हुआ (सूरिः) विद्वान् (अप्सु) प्राणों में (आपूणति) प्रसन्न होता है (इव यूथा अप्सु) जिस प्रकार पशुओं के समूह जल में तृप्त होते हैं।

इस विराट् विश्व के दर्शन से उसकी अनन्त शक्ति का पता चलता है। उसकी लीला कितनी विचित्र है बिना किसी सहारे के सभी ग्रह, उपग्रह, सूर्य और तारों को उसने धारण किया हुआ है !

ऐसे सर्वशक्तिमान्, व्यापक और सर्वव्यापी प्रभु से जब मनुष्य का मन लग जाता है, उससे उसकी एकता हो जाती है तब वह और कहीं भटकता पसन्द नहीं करता। ‘जगज्जीवन’ के शब्दों में वह अपना मन ‘सर्वशक्तिमान्’ परमात्मा ही में लगाता है—

सत समरथ में राखि मन,

करिय जगत् का काम।

‘जगज्जीवन’ यह मन्त्र है,

सदा सुख विसराम॥

यदि तू सदा सुख और शक्ति चाहता है तो यह महामन्त्र सीख ले—‘तू अपना मन तो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर (सत् समर्थ पुरुष) में लगाये रख, और जगत् के कर्तव्य कर्म करता जा।

ऋग्वेद के ५।३६।२ मन्त्र में ‘शविष्ठ’ शब्द द्वारा ईश्वर को शक्तिमय बतलाया गया है और उससे प्रार्थना करते हुए कहा गया है “हे शक्तिमय ईश्वर ! तू सबको भोगादि के लिए प्रशंसनीय अन्न देता है जिसको न चोर चुरा सकता है, न राजा हरण कर सकता है और न डाकू लूट सकता है, ऐसा अद्भुत ज्ञानरूप धन देता है। यह तुम्हारी ही शक्ति और महिमा है।”

ऋग्वेद के ६।२५।५ में कहा गया है—

नहि त्वा शूरो न तुरो न घृष्णुः ।

“हे प्रभो ! तुम्हारे साथ न कोई शूरवीर, न कोई शत्रुनाशक, न कोई यापनीय योद्धा और न कोई शत्रुओं का घर्षण करनेवाला ही युद्ध कर सकता है। तू सब वीरों का पराभव कर सकता है।”

ऋग्वेद के १।१००।१५ मन्त्र में बतलाया गया है—

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपंश्चन शवसो अन्तमापुः ।

स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्षमो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊतो ॥

परमेश्वर की अनुपम शक्ति का कोई अन्त नहीं पा सकता। वह अपने बल से पृथिवी और द्युलोक को वश में रखता है। अर्थात् वह स्वयं उनसे अधिक शक्तिशाली है। उस महान् शक्तिशाली की शक्ति जब हमारी रक्षा कर रही होती है तो भला हमारा अनिष्ट कैसे हो सकता है, हमारा दुःख कैसे रह सकता है ! तभी तो कवि ने कहा है—

आओ प्यारे, तुम्हें मिलायें वैद्यराज उस ईश्वर से ।

जिसके निकट रोग नहीं आते ऐसे उस जगदीश्वर से ॥

सब दुःखों का हरनेवाला जगन्नि यन्ता स्वामी है ।

जीवनज्योति जगानेवाला घट-घट अन्तर्यामी है ॥

एक अन्य मन्त्र देखिए—

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्तवानि च ।

यमर्का अश्वरं विदुः ॥

—ऋ० ८।६३।६

अर्थात् जिस प्रभु को, स्तुति करनेवाले ज्ञानीभक्त, अहिंसनीय, अहिंसक जानते हैं, उस सकलैश्वर्य-सम्पन्न प्रभु में ही कृत = प्रकाशित और करिष्यमाण = अप्रकाशित सब शक्तियाँ हैं। इसलिए वेद कहता है—

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।

परि यो विश्वा भुवनानि पप्रयेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥

—ऋ० ६।७।७

जिस (सुक्रतुः) उत्तम रचना करनेवाले महान् शिल्पी (वैश्वानरः) सब विश्व के लोगों के हितकारी भगवान् ने (रजांसि) पृथिवी आदि लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाया है (कविः) जिस महान् ज्ञानी ने (दिवः) द्युलोक के (रोचनाः) चमकनेवाले सूर्यादि लोकों को (वि) बनाया (यः) जिसने (विश्व) सभी (भुवनानि) लोकों का (पप्रये) विस्तार किया है, वही भगवान् (अदब्धः) अश्रम्य शक्तियोंवाला (गोपाः) हमारी इन्द्रियों, ज्ञान, गीर्वाण और भूमि की रक्षा करनेवाला है (अमृतस्य) अमृतसुख की (रक्षिता) रक्षा करनेवाला है।

सचमुच, भगवान् अदम्य शक्तिवाले हैं। उनकी शक्तियों को कोई दबा नहीं

सकता। कोई पार नहीं पा सकता। उनकी शक्तियों का पता तो इस पृथिवी तथा उसपर पाये जानेवाले लाखों प्रकार के पदार्थों को देखने से चलता है। प्रत्येक वस्तु में किस अद्भुत बुद्धि और शक्तिमत्ता का परिचय दिया गया है। जरा आँख उठाकर रात के समय आकाश में छिदकनेवाले तारों और अमृत स्यन्दन करनेवाले चन्द्रमा तथा दिन के समय अपनी प्रभा से सबको अभिभूत करनेवाले सूर्य भगवान् को निहार लो, भगवान् किस अद्भुत शक्ति और महिमा के स्वामी हैं, पता चल जाएगा। यदि हम अपनी रक्षा चाहते हैं तो उस अपरिमित शक्तिशाली का आश्रय लेना चाहिए। उसके आश्रय में जाने से ही हमारी रक्षा हो सकेगी और रक्षा के फलस्वरूप अमृतरस मिल सकेगा।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में उसकी अद्भुत शक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति चेत्ता तमाहुरर्ष्यं पुरुषं महान्तम् ॥

—श्वेताश्वतर ३।१६

उसके न हाथ हैं, न पाँव हैं फिर भी अत्यन्त वेग से वह गति करता है, बिना आँख के देखता है, बिना कान के सुनता है, जो कुछ जानने योग्य है उसे वह जानता है, परन्तु उसे कोई नहीं जान पाता। सृष्टि का वही महान् आदिपुरुष—ईश्वर है।

हम आपके सामने यही कहेंगे “अरे भक्त! याद रख, ईश्वर के अलौकिक सम्बल से मनुष्य भी अनेक अद्भुत कार्य कर सकता है। संसार का प्रत्येक महान् व्यक्ति, प्रत्येक कलाकार और प्रत्येक आविष्कारक उसकी ही प्रेरणा से अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूरी कर सका है। उनकी इन अलौकिक सफलताओं के पीछे ईश्वर की अद्भुत शक्ति का हाथ है। सच तो यह है कि ईश्वर के प्रकाश में कदम रखते ही मनुष्य की सब दुर्बलताएँ, सब पाप, सूर्य के सामने अन्धकार की तरह नष्ट हो जाते हैं। बस एक बार सम्पूर्ण हृदय से उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर में विश्वास रख उसके पास जाओ वह अपने अनुपम सौन्दर्य से हमें सुन्दर बना देगा, अपनी उज्ज्वलता से हमें उज्ज्वल बना देगा और तब हम उस ‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’ शक्तिशाली प्रभु की अमर सन्तान बन शान्ति, शक्ति और सुख प्राप्त कर सकेंगे।

ईश्वर सर्वाधार और सबका स्वामी है

इस संसार में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अनादि और अनन्त हैं। इनमें से प्रकृति और जीव का अधिष्ठाता, नियामक और नियन्ता परमेश्वर है। सत्यार्थ-प्रकाश में एक मन्त्र में स्वामी दयानन्दजी महाराज ने ऋग्वेद के एक मन्त्र द्वारा

बड़े सुन्दर शब्दों में तीन अनादि शक्तियों का उल्लेख किया है और लिखा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्वनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

—ऋ० १।१६४।२०

(सयुजा सखाया) साथ मिले-जुले मित्र (द्वा सुपर्णा) दो सुपर्ण (समानं वृक्षं परि षस्वजाते) एक ही वृक्ष पर साथ-साथ रहते हैं (तयोः अन्यः) उनमें से एक (स्वादु पिप्पलं अस्ति) भीठा फल खाता है (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) भोग न करता हुआ (अभिचाकशीति) केवल प्रकाशता है ।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों प्रकृतिरूपी वृक्ष पर बैठते हैं । जीवात्मा कर्म के फल खाता है, परमात्मा कुछ न भोगता हुआ (उसके कर्मों का फल देता हुआ) प्रकाशमान होता है । ये दोनों परस्पर मित्र हैं । विशेषकर परमात्मा जीवात्मा की उत्तम सहायता करने के कारण उसका सच्चा मित्र है । उसी को पिता, माता और बन्धु आदि नामों से वेद में पुकारा गया है ।

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वत्त्वे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥

—ऋ० १।१६४।२२

(यस्मिन् वृक्षे) जिस वृक्ष में (मध्वदः सुपर्णाः) मीठा फल खानेवाले पक्षी (निविशन्ते) रहते हैं और (विश्वे) सब (अधिसुवते) सन्तान उत्पन्न करते हैं (तस्य इत्) उसी का ही (स्वादु पिप्पलं आहुः) मीठा फल है ऐसा कहते हैं । (यः) जो (अग्रे) प्रारम्भ में उस (पितरम्) अपने पिता को (न वेद) नहीं जानता (तत् न उन्नशत्) वह उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सका ।

प्रकृति जगद्रूपी वृक्ष पर जो मीठे फल लगते हैं उनको जीवात्मागण खाते हैं और उसी वृक्ष पर रहकर सन्तान उत्पन्न करते हैं । इनका पिता परमात्मा है; जो उसको जानते हैं वे बन्धन से छूट जाते हैं परन्तु जो उसको जानने की परवाह नहीं करते वे सुख से दूर हो जाते हैं ।

इस मन्त्र में जिस प्रकार जीवात्मा का पिता और आधार परमेश्वर को माना है उसी प्रकार ऋग्वेद के एक दूसरे मन्त्र १०।१।७ में प्रकृति का स्वामी भी परमेश्वर को बताते हुए कहा गया है—

असच्च सच्च परमे व्योमन्वक्षस्य जन्मन्निदितरूपस्ये ।

अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषमश्च धेनुः ॥

—ऋ० १०।१।७

बल की उत्पत्ति के समय (अदितेः) अविनाशी मूल प्रकृति के (उपस्थे) समीप स्थान पर (परमे व्योमन्) अत्यन्त विस्तृत आकाश में (सत् च) तीनों कालों में एक-जैसा रहनेवाला अधिकारी आत्मतत्त्व और (असत् च) उस आत्मा से भिन्न पदार्थ थे

इस (पूर्व आयुनि) पूर्व अवस्था में (ह नः) निश्चय से हम सबके अन्दर (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्य धर्म का पहला प्रवर्तक (अग्निः) तेजस्वी ईश्वर प्रकाशित हुआ जिसके साथ (वृषभः) बलवान् आत्मा और (धेनुः) कामधेनु बुद्धि अथवा प्रकृति थी।

प्रकृति और ईश्वर अनादिकाल से हैं। प्रकृति में बल का संचार ईश्वर करता है। ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म अवस्था से पूर्व ब्रह्माण्ड अव्याकृत अवस्था में होता है अर्थात् प्रकृति की अपनी कारणावस्था में होता है। इस अव्याकृत अवस्था का नियामक होने से परमात्मा का नाम ईश्वर है। परमात्मा अपना ईशन् (ईश + वर) अपना नियमन का कार्य मुख्य रूप से इस अव्याकृत अवस्था द्वारा करता है। जगत् के मूल कारण में लगी हुई परमात्मा की ईशन शक्ति ही मूल कारण की परिणत अवस्थाओं में भी ईशन का काम दे रही है। जिस प्रकार मशीन के पुर्जों में गति देने से समग्र मशीन गति में हो जाती है इसी प्रकार मूल कारण में प्रेरणा देनेवाली ईशन शक्ति ही स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् में भी ईशन का कार्य कर रही है, अतः ईशन शक्ति का मुख्य सम्बन्ध चूँकि मूल कारण के साथ हुआ करता है तथा कार्यों में ईशन शक्ति का प्रभाव मूल कारण के द्वारा आया करता है, अतः जगत् के मूल कारण का नियामक होने के कारण परमात्मा को ईश्वर (ईशन शक्तिवाला) कहा जाता है। सत्य धर्म का पहला प्रवर्तक ईश्वर है। बल और पोषकशक्ति, बलवान् आत्मा और सुबुद्धि ये सब परमेश्वर के साथ रहते हैं अर्थात् परमेश्वर से सबको बल प्राप्त होता है और परमात्मा से उत्तम बल प्राप्त करके ही सब अपना कार्य योग्य रीति से करने में सफलता और सुफलता प्राप्त करते हैं।

एक अन्य मन्त्र में परमेश्वर को सर्वाधार माना गया है—

वया इदग्ने अग्नयस्ते अग्नये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

वंशवानर नाभिरसि क्षितोनां स्थूणेव जनां उपमिच्छयन्थ ॥

—ऋ० १।५।११

(अग्ने) हे अग्ने ! (ते अग्नये अग्नयः) वे दूसरे अग्नि—जीव (त्वे) तेरे अन्दर (वया इत्) शास्त्राओं के समान ही हैं अर्थात् आश्रित हैं। वे सब (अमृताः) मुक्त होकर तुझसे (मादयन्ते) आनन्द पाते हैं। (वंशवानर) सर्वन्तियन्ता ईश्वर ! तू (क्षितोनां नाभिः) सब लोकों का केन्द्र है (स्थूणा इव) स्तम्भ के समान (जनान्) सब जनता का तू (उपमित्) समीपस्थ होता हुआ (ययन्थ) नियमन करता है।

इस सर्वाधार ईश्वर की शक्ति और सहायता प्राप्त करने के लिए और शक्तियों का स्वामी बनने के विषय में वेद कहता है—

त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरस्त्वन्तः ।

अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्विरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥

—अ० १।१२।१०

प्रेममय आचरण करनेवाले लोग अपने कर्मों में तैंतीस देवों और तीन प्रकार की शक्तियों को सुरक्षित रखते हैं। उस आनन्दमय परमेश्वर में जो तेज है उसके द्वारा यह मनुष्य पुरुषार्थ करता है। ईश्वरभक्ति से मनुष्य संसार की समस्त शक्तियों का स्वामी हो जाता है और वह प्रतिदिन परमात्मा को अपना आधार अनुभव करने लगता है।

जल, स्थल, स्थावर, जंगम, वन, पर्वत आदिकों के अन्दर व्याप्त अमर परमात्मा अपनी शक्ति से रहता है। जिस प्रकार प्रजाओं का निवासक राजा होता है उसी प्रकार सबका निवासक वही है। इसलिए उसकी पूजा करनी चाहिए।

गर्भो यो अषां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।

अद्वौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥

—ऋ० १।७०।२

(यः) जो (अषां गर्भः) जलों का आधार (वनानां गर्भः) वनों का सहारा (स्थातां चरथां च गर्भः) स्थावर और जंगमों का आश्रय है (अद्वौ दुरोणे अन्तः) पर्वत की गुहा के अन्दर (अमृतः स्वाधीः) अमर और अपनी शक्ति से विराजमान (विशां विश्वः न) प्रजाओं के निवासक राजा के समान रहता है (अस्मैचित्) इसी के लिए पूजा-अर्पण करना योग्य है।

परमात्मा को सर्वेश्वर बताते हुए एक मन्त्र में कहा है—

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।

त्वं राजा जनानाम् ॥

—ऋ० ८।६४।३

हे ऐश्वर्यसम्पन्न ईश्वर ! तुम उत्पन्न पदार्थों के ईश्वर हो और अनुत्पन्न (जीव और प्रकृति) के भी अधिष्ठाता हो, तुम भविष्य में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं के स्वामी हो और सभी लोकों के राजा हो।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अग्नि सूर्य ।

सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥

—ऋ० ८।६३।४

हे वृत्रहन् = अज्ञाननाशक सूर्य के समान परमेश्वर ! चारों ओर जो कुछ भी है चाहे वह प्रकट हो चाहे अप्रकट वह सब तेरे वश में है।

ईश्वर सबका पालक तथा रक्षक है। वही सबको मोक्ष प्रदान करता है। प्रत्येक वस्तु का स्वामी परमेश्वर है।

अथर्ववेद १०।८।११ में बतलाया गया है कि सब चराचर जगत् को एक ही सत्यब्रह्म का आधार है और वह आधारभूत ब्रह्म एक ही है। मन्त्र कहता है—

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भवत् ।

तदाधार पृथिवी विश्वरूपं तत्संभूय सवत्येकमेव ॥

अर्थात् जो चलता है, उड़ता है और जो ठहरता है; जो प्राणवाला, प्राणरहित

और सत्ता की आरम्भिक अवस्था में है, इन सबमें जो वर्तमान है, वही पृथिवी और द्युलोक को आधार देता है, प्रलयावस्था में वह ब्रह्म सबके साथ मिलकर एक ही होता है अर्थात् जीव और प्रकृति अव्याकरणीय अवस्था में हो जाते हैं। केवल सत्पदवाच्य होते हैं।

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।

तदेव मन्येऽज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥

—अ० १०।८।१६

जहाँ से सूर्य उदय होता है और जहाँ वह अस्त होता है वही श्रेष्ठ ब्रह्म है। कोई भी उसका उल्लंघन नहीं करता।

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्तोताः प्रजा इमाः ।

सूत्रं सुवस्याहं वेदायो यद् ब्राह्मणं महत् ॥

—अ० १०।८।३८

अर्थात् जिसमें ये सब प्रजाएँ ओतप्रोत हैं, उस फैले हुए सूत्र को मैं जानता हूँ और सूत्र के सूत्र को भी जानता हूँ और बड़ा ब्रह्मज्ञान भी मैं जानता हूँ।

यस्मिन्स्तब्धवा प्रजापतिलोकान् सर्वो अधारयत् ।

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्वदेव सः ॥

—अ० १०।७।७

अर्थात् जिसमें रहकर प्रजापति सब लोकों का स्तम्भन करके धारण किये करता है, वह आधारस्तम्भ है ऐसा तू कह। वह निश्चय करके आनन्दस्वरूप परमात्मा है।

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।

असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्वदेव सः ॥

—अ० १०।७।१०

ज्ञानी लोग जिसमें सब लोकों और सब कोशों को तथा मूल प्रकृति को और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करते हैं तथा जगत् और जीवात्मा भी जिसके भीतर हैं, वही सर्वाधार है ऐसा तू कह। वह अत्यन्त आनन्दरूप है।

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।

यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यापिताः

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्वदेव सः ॥

—अ० १०।७।१२

जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक रहते हैं, जिसमें अग्नि, चन्द्र, सूर्य, वायु—ये देव रहते हैं वही सबका आधारस्तम्भ है, वही आनन्दमय है, ऐसा तू कह।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥—अ० १०।८।१

जो भूत और भविष्यकालीन सबका अधिष्ठाता है और जिसकी आत्मीयता का आनन्द ही कैवल्य है उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्यर्बतानाम् ।

इन्द्रो बृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमं योगे हव्य इन्द्रः ॥

—ऋ० १०।८६।१०

अर्थात् परमेश्वर ही द्युलोक का अधिष्ठाता है, परमेश्वर ही पृथिवी का, परमेश्वर ही जलों का, परमेश्वर ही पर्वतों तथा मेघों का, परमेश्वर ही वृद्धिशीलों का, (इन्द्रः इत् मेधिराणाम्) इन्द्र ही मेधावियों या इकट्ठे कार्य करनेवालों का स्वामी है। योग और क्षेम में ईश्वर ही स्मरण करने योग्य है।

सचमुच जब हम अपनी दृष्टि उठाकर इस विराट् विश्व को देखते हैं तो हमें इस विश्व की रचना, पालन और संहार में उस विराट् प्रभु का हाथ दिखाई देता है जिसका एक-एक नियम अटूट और अविचल है, जिसकी व्यवस्था अचम्भे में डालती है, जिसका न्याय अक्षुण्ण और अपूर्व है, सम्पूर्ण विषयों के वेद जिसके निःश्वासमात्र हैं, अनन्तकाल से संसार में प्रकाश का प्रसार करनेवाले सूर्य और चाँद जिसके निमेषमात्र हैं, ऊँची लहरों में उमड़ता असीम समुद्र जिसकी आज्ञा से सीमा न छोड़ने के लिए विवश है और जिसके हुक्म को बजाने के लिए हजारों आत्माएँ हर वक्त हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं।

इसलिए आइए, हम सर्वाधार सर्वेश्वर प्रभु से प्रार्थना करें—

छोड़ नटनागर तुम्हें, जाऊँ कहाँ ?

तुम-सा वरदाता भला पाऊँ कहाँ ?

कीर्ति दो, धन दो प्रभो ! बल दो मुझे,

पूर्ण हो सब कामता, पुत्र दो मुझे,

गा रहीं सब वाणियाँ तुमको यहाँ,

भेंट मैं अन्यत्र पहुँचाऊँ कहाँ ?

ईश्वर अजर और अमर है

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद, बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।

अषाढहेन शवसा शशुवांसं, सद्यश्चिद्यो वावृधे अशामि ॥

—ऋग्वेद ६।१६।२

(यः) जो (धिषणा) बुद्धि या कर्म से (सातये) सत्कार के लिए, पूजा के लिए (बृहन्तम्) सर्वमहान् (युवानम्) सदा जवान (ऋष्वम्) पूर्ण ज्ञानी (अषाढहेन शवसा शशुवांसम्) असह्यबल से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त (अजरं) जरारहित

(इन्द्रम्) सर्वेश्वर्यवान् भगवान् को (धात्) धारण करता है वह (सद्यः) शीघ्र (असामि) अद्वितीय अथवा अत्यन्त (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है।

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि परमेश्वर सदा युवा रहता है, वह जरा अर्थात् बुढ़ापे से रहित है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि तथा कर्म द्वारा उसकी पूजा करे। वेद में अनेक स्थलों पर परमेश्वर को अजर और अमर कहा गया है। ऋग्वेद में बतलाया गया है—

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयि रयिवः सुवीरम् ।

अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥

— ऋ० ६।५।७

हे (अजर अग्ने) क्षीण और जीर्ण न होनेवाले तेजस्वी देव ! (तव ऊती) तेरे रक्षणों के द्वारा (कामं अश्याम्) हम मन की कामना को प्राप्त करें, हे (रयिवः) धन-युक्त ! (सुवीरं रयि) उत्तम वीरों से युक्त धन को (अश्याम) प्राप्त करें। (अभिवाजयन्तः) सब प्रकार से भोग्य अन्न की इच्छा करनेवाले हम (वाजं अश्याम) अन्नादि प्राप्त करें तथा (ते अजरं द्युम्नम्) तेरे क्षीण न होनेवाले प्रकाशमान यश को (अश्याम) प्राप्त करें।

वेद के एक मन्त्र में ईश्वर को अमर बतलाया गया है और उससे धन और ऐश्वर्य की कामना की गई है—

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्ये कदा चन ।

सोमभिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सद्ये रिषाथन ॥

— ऋ० १०।४८।५

(अहमिन्द्रः न परा जिग्ये) मैं ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वप्रकाशक कभी किसी से पराजय को प्राप्त नहीं होता (न कदाचन मृत्यवे अवतस्ये) और न ही कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ, अर्थात् अमर हूँ, (धनम् इत्) धनादि ऐश्वर्य का प्रदाता मैं ही हूँ। (सुन्वन्तः) धनादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए तुम (वसु) विज्ञानादि धन को (मा सोमं इत्) मुझ ईश्वर ही से (याचत) माँगो (पूरवः) हे विजानी भक्तो ! (मे सद्ये न रिषाथन) मेरी मंत्री में तुम्हें कष्ट न होगा।

इन मन्त्रों में ईश्वर को अजर और अमर बतलाया गया है। पहले मन्त्र में उसे अजर और सदा युवा रहनेवाला बताते हुए पूर्ण ज्ञानी, असह्यबल से युक्त होकर सर्वत्र व्यापक, सर्वेश्वर्यवान् भगवान् को बुद्धि और कर्म द्वारा प्राप्त करने की बात कही गई है।

बुद्धि या ज्ञान द्वारा भगवान् को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति सांसारिक कष्टों, दुःखों और विपत्तियों के प्रति निश्चिन्त रहता है। दो हजार वर्ष पहले यूनान के एक नगर को शत्रुओं ने जीत लिया। नगरनिवासी वीरता से लड़े थे, अतः विजेताओं ने नगरवासियों को जितना सामान वे ले जा सकें, ले जाने की स्वीकृति

दे दी। परिवार के सभी स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने कन्वों और पीठ पर सामान लादे चले जा रहे थे। बोझ से उनकी कमर झुकी जा रही थी, पाँव लड़खड़ा रहे थे, प्यास से कण्ठ सूखे जा रहे थे और सब हाँफ रहे थे। उनमें एक पुरुष खाली हाथ था। वह दार्शनिक था वायस।

‘क्या तुम्हारे पास ले चलने को कोई सामान नहीं है? क्या तुम अपने साथ कुछ भी नहीं ले चल रहे हो?’ बोझ से दबे जाते हुए उसके साथियों ने उससे पूछा।

एक स्त्री ने दयापूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा “ओह, बेचारा कितना गरीब है, उसके पास ले-जाने को कुछ है ही नहीं!”

दार्शनिक हँसा, उसने मुस्कराते हुए कहा, “अपने साथ मैं अपनी सारी पूँजी ले-चल रहा हूँ।”

उसकी पूँजी आत्ममन्थन से निकले हुए विचार थे जिन्हें वह अपने मस्तिष्क में अपने साथ लिये जा रहा था। उसकी वह अदृश्य पूँजी सदा उसके साथ रहती थी। यह ज्ञान की पूँजी ऐसी पूँजी है जो आनन्दस्वरूप परमेश्वर से मनुष्य का सम्पर्क जोड़ देती है। यह प्रभु की बुद्धि या ज्ञान द्वारा उपासना का मार्ग खोल देती है। जो प्रभु के आनन्दमय, सर्वशक्तिशाली रूप का मर्म समझ लेता है उसे कष्ट नहीं हो सकता है। इसीलिए वायस चिन्तामुक्त था—दुःखों से परे था। उसकी पूँजी=ब्रह्मज्ञान सबसे महान् थी।

इसके बाद के मन्त्रों में परमेश्वर से अन्न, धन और बल की प्रार्थना की गई है और परमेश्वर को पराजित न होनेवाला बताया गया है। परमेश्वर से इन वस्तुओं की जब हम माँग या प्रार्थना करते हैं, उस समय कभी-कभी हम यह सोचने लगते हैं कि परमेश्वर उन वस्तुओं को उठाकर हमें दे देगा। सोमनाथ के पुजारी सोमनाथ भगवान् से रक्षा की प्रार्थना करते रह गये परन्तु, सोमनाथ उनकी रक्षा न कर सका। मन्दिर लुट गया। भगवान् की मूर्ति टूट गई, वे पराजित हो गये। प्रार्थना करनेवाले कत्ल कर दिये गये। क्यों? क्योंकि मूर्ति पत्थर की थी—वह भगवान् का वास्तविक स्वरूप न था। दूसरी बात यह थी कि भगवान् स्वयं रूप धारण कर या स्वयं प्रकट होकर मनुष्य को बचा नहीं सकता। शरीर और आत्मा ये दो वस्तुएँ हैं। शरीर और आत्मा की इच्छाओं में अन्तर भी होता है। आत्मा की इच्छाएँ वास्तव में ईश्वरीय प्रेरणा का फल हैं। जिस समय मनुष्य के हृदय या आत्मा में परमेश्वर की शक्ति का उदय हो जाता है, जब उसके प्रति अटल विश्वास जाग्रत हो जाता है, मनुष्य में एक अद्भुत शक्ति, अद्भुत बल आ जाता है। उस समय वह अपने को प्रभु के समान शक्तिशाली अनुभव करने लगता है और उसके मुँह से निकल पड़ता है ‘अहमिन्द्रो न पराजिये’। मैं इन्द्र हूँ—मैं किसी से कभी पराजित हो ही नहीं सकता। सचमुच, जिसके ऊपर प्रभु की कृपा है वह अपने को वैसा समझे भी क्यों नहीं? इसलिए उस समय उसकी अभिलाषाएँ

प्रभु की प्रेरणाएँ बन जाती हैं। ये अभिलाषाएँ हमारे मन के द्वार खोलकर हमें सफलता का मार्ग दिखला देती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को जो परमेश्वर के इस 'अजर' और 'अमर' रूप का ध्यान कर अपनी वास्तविकता को समझ लेता है, उसे यह ईश्वरी शक्ति जीवन में निर्भीकता प्रदान करती है—आगे बढ़ाती है। उनमें आत्मविश्वास जाग्रत होता है। यह आत्मविश्वास आपत्तियों और विरोधों में भी अपने मार्ग पर डटे रहने की प्रेरणा देता है। यह निश्चित है कि इस ईश्वरविश्वास के बल पर जो अपने लक्ष्य पर डटे रहते हैं, जो अड़चनों से टक्कर लेते हुए, अपनी मंजिल की ओर लगातार बढ़ते रहते हैं, विजय उन्हें ही मिलती है।

कोलम्बस ऐसा ही साहसी नाविक था। अपने साथी मल्लाहों के घोर विरोध और मार देने तक की घमकी से भी वह नहीं धक्का खाया। उन दिनों लिखी उसकी डायरी के ये शब्द 'आज हमारा जहाज दक्षिण की ओर इतना आगे बढ़ा, क्योंकि यही हमारा लक्ष्य था'—इसका प्रमाण है कि लक्ष्य और केवल लक्ष्य ही उसकी आँखों के सामने रहता था। उसका जहाज दक्षिण की ओर चलता ही गया जब तक वह अपने लक्ष्य तक पहुँच नहीं गया। यह होता है ईश्वरीय शक्ति की प्रेरणा का फल !

ईश्वर का 'अजर' और 'अमर' रूप हमें विश्वास दिलाएगा कि वह परमेश्वर कभी मरता नहीं है और कभी बूढ़ा नहीं होता है, इसलिए वह सदा हमारे साथ शक्तिमान् के रूप में विद्यमान रहता है अर्थात् जो व्यक्ति अजर और अमर ईश्वर की छत्रछाया में रहता है, ईश्वर उसकी रक्षा करता है। अगर हम उसके संरक्षण में रहते हुए उसपर विश्वास करेंगे तो वह विश्वास हमारी ढाल बनकर हमारी रक्षा करेगा। वास्तव में जब 'अजर' परमेश्वर का 'अमर' रूप हमारी दृष्टि और मन में रहता है तब हम उस सर्वशक्तिशाली परमेश्वर की स्थायी छत्रछाया का अनुभव करते हैं, तब भय और कमजोरी दूर होती हैं। निर्भयता और साहस के आने से हम कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं और आगे बढ़ने लगते हैं। ईश्वर में विश्वास मन में साहस लाता है। साहस मन का सम्राट् है। उसके विकास के साथ ही अन्य मानसिक शक्तियाँ विकसित होने लगती हैं और उसके पतन के साथ अन्य मानसिक शक्तियाँ भी अपना काम छोड़ देती हैं। साहस के नेतृत्व के बिना कोई भी शक्ति आगे नहीं बढ़ती। परन्तु साहस जब मार्ग दिखाता है तो अन्य शक्तियाँ भी उभरकर सामने आ जाती हैं। शक्तियों के सामने आने से मनुष्य को अन्न, बल, शक्ति और धन भी प्राप्त होता है। इसीलिए इस मन्त्र में प्रभु से यह प्रार्थना की गई।

निराशा और भय से छुटकारा पाने के लिए 'अहमिन्द्रो न पराजिये' में इन्द्र हैं, कभी पराजित नहीं हो सकता हूँ, 'न मृत्यवे अवतस्ये कदाचन' कभी मृत्यु का प्राप्त नहीं कर सकता हूँ—इन रूपों का ध्यान करना चाहिए। मृत्यु क्या है ?

जीवन की गति का अवरोध होना ही मृत्यु है। जब हमारा कदम आगे बढ़ने से रुक जाता है, मृत्यु हो जाती है। साहसहीन और निराश व्यक्ति साँस लेते हुए भी मृतवत् ही होते हैं। इसलिए इनको दूर करने के लिए उस देदीप्यमान और तेजस्वी, गतिशील और युवा परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। वह हमें अपनी प्रेरणा से प्रेरित करेगा, वह हमें अपने जीवन से जीवित करेगा, वह हमें प्राण से अनुप्राणित करेगा। उसके द्वारा बताये हुए मार्ग और उसकी दी प्रेरणा का उदय अपनी अन्तरात्माओं में कीजिए और आशा तथा विश्वास के साथ जीवन में बढ़ते चलिए, तो कोई भी कठिनाई आपकी प्रगति नहीं रोक सकती। जब आप अपनी ईश्वरीय शक्ति को पहचान जाएँगे, तब आपका खोया साहस लौट आएगा। आप अपने विषय में एक नवीन दृष्टिकोण लेकर चल सकेंगे, अर्थात् बिल्कुल नया जीवन पा लेंगे।

बुढ़ापा और मृत्यु तो भाग्यहीनों के लिए है। ईश्वरविश्वासी न बूढ़ा होता है, न मरता है। इसलिए प्रभु के अजर और अमर रूप के उपासको ! आप केवल उसके इन गुणों का मुख से उच्चारणमात्र ही मत करो, इन्हें अपने में धारण भी करो। उठो और प्रकाश की ओर, जीवन की ओर, अभ्युदय की ओर बढ़ चलो। भाग्य को कोसना छोड़कर साहसी और सफल जीवन बनाकर दिखाओ जो तुम्हारा प्रभु तुमसे चाहता है। अपने-आपसे कहो—मैं उस अजर और अमर, कभी पराजित न होनेवाले, कभी न मरनेवाले प्रभु का प्रतिनिधि हूँ, फिर निराश होने का क्या कारण है? मेरा निराश और निरुत्साहित होना ईश्वर को कभी स्वीकार नहीं। मैं जीवन में सरलता या पराजय के लिए नहीं आया। मैं स्वयं विजय हूँ। मैं वीर, साहसी और विजेता हूँ, परिस्थितियों का दास नहीं। मैं स्वतन्त्र हूँ, बन्दी नहीं। मैं साहस हूँ, मैं शक्ति हूँ—आत्मविश्वास हूँ। मेरा तो यही निश्चय है—यही विश्वास है कि मेरे सारे जीवन की डोर उस सर्वशक्तिमान्, अजर और अमर प्रभु के हाथ में है जो सारे विश्व का नियन्ता है।

इस विश्वास के साथ जीवन में चलनेवाला मनुष्य कभी असफल नहीं हो सकता, यही इन मन्त्रों का भाव है।

अजर-अमर प्रभु की सन्तानो ! तुम्हारा अस्तित्व बिनाश और परिवर्तन से ऊपर है। तुम अमर हो, तब तुम्हें जीवन में घबराने की आवश्यकता क्या? साधारण बातों से घबरानो मत ! परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करो ! तुम्हें अन्त, बल, शक्ति, ऐश्वर्य और जीवन प्राप्त होगा। आइए हम प्रभु से कहें—

तुम शक्तिमान्, तुम ज्ञानवान्, तुम ऐश्वर्यों की सकल खान।

भर दो घर दो मुझमें अपनी, सब-की-सब जो निधियाँ महान् ॥

हे देव, मेरे देव...

मैं जिससे मानव-धर्म पाल, सब तोड़ विषवन्धन कराल।

वन राम कृष्ण और दयानन्द तुममें लय हो जाऊँ कृपाल ॥

हे देव, मेरे देव...

ईश्वर अनन्त और अनुपम है

अनन्तं विततं पुरुषानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।

ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥

—अ० १०।८।१२

(अनन्तं) अन्तरहित ब्रह्म (पुरुषा) सर्वत्र (विततं) फैला हुआ है। (समन्ते) मिले हुए (अनन्तं) अनन्त (अन्तवत् च) और अन्तवाला (ते) इन दोनों को (विचिन्वन्) अलग-अलग करता हुआ (उत अस्य भूतं भव्यम्) तथा इसके भूत और भविष्य को (विद्वान्) जाननेवाला (नाकपालः) सुख का पालनकर्त्ता होकर (चरति) विचरता है।

ऋग्वेद १।१००।१५ में कहा है—परमेश्वर के बल का अन्त कोई भी नहीं पा सकता। वह द्युलोक और पृथिवी से बड़ा है। उसकी रक्षा में रहने से कभी नाश नहीं होगा—

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।

स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्षमो दिवश्च मरुत्वान्नो भवतिवन्द्र ऊती ॥

(देवाः देवताः) विद्वान् और सूर्य-चन्द्रादि (मर्ताः) मनुष्य अथवा (आपः) जल भी (यस्य शवसः अन्तम्) जिसके बल का अन्त (न आपुः) नहीं प्राप्त कर सकते (स मरुत्वान् इन्द्रः) वह जीवनाधार प्रभु (दिवः क्षमः च) द्युलोक और पृथिवीलोक को (त्वक्षसा प्ररिक्वा) बल से रिक्त करनेवाला (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा करनेवाला है।

अन्तवाले अर्थात् मर्यादा से युक्त जगत् के अन्दर अनन्त अर्थात् मर्यादा-रहित परमात्मा फैला हुआ है। अनन्त, सान्त एक-दूसरे के साथ मिले-जुले हैं। इसके विवेक को जाननेवाला ज्ञानी आगे उन्नति करता है।

संसार में मनुष्य सुख और शान्ति चाहता है। विश्व में सुख और शान्ति लाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय यह है कि हम अपना सुख अनन्त और अनुपम भगवान् को अर्पित करें। जितने दर्जे तक हम अपनी एकता, अपना सम्बन्ध उस अनन्त प्रभु से करेंगे, जितने दर्जे तक हम उस ब्रह्मचारा को अपने मन में स्थान देंगे उतने दर्जे तक उस महान् शक्तिशाली प्रभु के प्रेम और सौन्दर्य का सम्बन्ध कर शान्तिलाभ करेंगे। सचमुच यह बात बहुत ही ठीक है। हम अनन्त से आ रहे हैं। अनन्त में हमारा निवास है और अनन्त की ओर हम जा रहे हैं। इसलिए हे भद्र पुरुषो! सत्यज्ञान के रत्नों का संचय करो, क्योंकि वही तुम्हारी सच्ची निधि है, जो तुम्हारे साथ जाती है। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने 'अखण्ड शान्ति की अनुभूति'

लेख में ठीक ही लिखा है—

यह पवित्र अनन्त विश्वात्मा आनन्द और शक्ति का स्रोत है। ज्योंही हम उसके साथ एकता स्थापित कर लेते हैं, त्योंही शान्ति और एकत्व की धारा का रसास्वादन हमें मिलने लगता है, क्योंकि शान्ति का मतलब ही है—एकत्व की स्थापना करना। एक गम्भीर आन्तरिक अभिप्राय इस सत्य की जड़ में काम कर रहा है। इस तथ्य को पहचानना कि हम आत्मा हैं और इसी विचार में निमग्न रहना कि हमें अध्यात्म की ओर मुंह करना है और इस प्रकार एकता और शान्ति का वातावरण पैदा करना है। हमारे इर्द-गिर्द लाखों स्त्री-पुरुष चिन्ता से दुःखी और अशान्त दिखाई पड़ते हैं जो इधर-उधर शान्ति के लिए भटक रहे हैं, और जिनके शरीर और आत्मा थकावट से चूर हैं वे शान्ति की तलाश में दूसरे देशों की यात्रा करते हैं, पृथिवी की प्रदक्षिणा करते हैं, तीर्थों की हवा खाते हैं, हरिद्वार में जाकर डुबकियाँ लगाते हैं, मुक्ति की तलाश में काशी या प्रयाग की धूल फाँकते हैं। किन्तु शोक ! उन्हें कभी भी शान्ति नहीं मिलती। मिले भी कैसे ? वे तो जहाँ शान्ति है वहाँ जाते ही नहीं। जहाँ शान्ति की छाया तक नहीं, वहाँ तलाश करते हैं। शान्ति केवल आत्मा में मिल सकती है। कठोपनिषद् में शान्ति के लिए नचिकेता को यम ने 'ओ३म्' नाम का चिन्तन और उसको हृदय में लाने का उपदेश दिया है। वहाँ आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

—कठोपनिषद् १।२।१२

जिस पद का प्रतिपादन सारे वेद करते हैं, समस्त तप जिसे बतलाते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है, संक्षेप में वही पद कहता हूँ। वह है ओ३म् ! 'ओ३म्' ईश्वर का निज नाम है। योगी याज्ञवल्क्य ने कहा—“वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः।” प्रणव या ओंकार परमात्मा का प्रतिपादक है। योगदर्शन में कहा है—“तस्य वाचकः प्रणवः” उस परमेश्वर का वाचक ओ३म् है। वेदों के अनुसार अनन्तता ईश्वर का एक भुज है। सान्त सर्वत्र और सब समय रह नहीं सकता। अनन्त के बिना न्याय नहीं हो सकता और न कर्मों का यथोचित फल ही मिल सकता है, अतः अनन्त प्रभु ही सुख देनेवाला, भूत, भविष्यत् और वर्तमान का ज्ञाता हो सकता है। परमेश्वर का बल अनन्त है। वह बुलोक और पृथिवीलोक से बहुत बड़ा है। उसकी रक्षा में रहने से नाश नहीं हो सकता।

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।

नोत स्ववृष्टि मदे अस्य युष्मत् एको अन्यच्चकृपे विश्वमानुषक ॥

—ऋ० १।५२।१४

(द्यावापृथिवी) बुलोक और पृथिवी लोक (यस्य व्यचः) जिसकी व्यापकता या

अनन्तता का अन्त (न अन्त) नहीं पाते और (रजसः सिन्धवः) अन्तरिक लोक भी जिसका अन्त (आनशुः) नहीं पा सकते (अस्य युध्यत) इसके युद्ध करने के समय (मदे) हर्ष में (स्ववृष्टि न) शास्त्रादिकों की अपनी वृष्टि जो होती है उसको भी कोई नहीं जानता। ऐसा (एकः) तू अकेला ही (अन्यत् विश्वं) अपने से भिन्न विश्व को (आनुषक् चकृषे) सम्पूर्ण रूप में करता है।

इस मन्त्र से पता चलता है कि परमात्मा त्रिलोक से भी अधिक है, अतः उसके अनन्त रूप को जानना सरल नहीं। उसकी अपनी विचित्रता के साथ शस्त्र-अस्त्रों की विचित्रता, शत्रुओं का नाश करना समझ नहीं आता। वह एक ही है। उसे किसी की सहायता की भी आवश्यकता नहीं। प्रभु के इस अनन्त और अद्भुत रूप का वर्णन करते हुए सन्त धरनीदास कहते हैं—

‘धरनी’ तन में तखत है, ता ऊपर सुलतान।

लेत मोजरा सब ही का, जहं लो जीव जहान ॥

अर्थात् इस तन के अन्दर ही तो बादशाही तख्त है जिसपर हमारा शाहों का शाह आसीन है। जगत् में जितने भी जीव हैं वहीं से बैठे-बैठे वह सबका मुजरा लिया करता है।

गरीबदास ने उसकी अनुपम महिमा का वर्णन करते हुए कहा—

साहिब तेरी साहिबी क्या कहूँ करतार।

पलक-पलक की दीठि में पूरन ब्रह्म हमार ॥

मेरे पूर्ण ब्रह्म स्वामी ! क्या कहूँ तेरी अनन्त महिमा को। धन्य ! हर पल और हर नजर में तेरा दर्शन मिल रहा है।

लोग उस अनन्त भगवान् को खोजने के लिए दूर-दूर भटकते हैं। कोई मन्दिर, कोई मस्जिद और कोई गिरजाघर में उसे खोजता है। कोई जंगल में भटकता है तो कोई पहाड़ की चोटी पर और कोई गुफाओं में पाने के लिए दौड़ता है। गरीबदास कहते हैं—

सात सरग आसमान पर, भटकता है मन मूढ़।

खालिक तो खोया नहीं, इसी महल में बैँड ॥

ओ भोंदू, कहीं भटक रहा है तू स्वर्गों में और सातवें आसमान पर ? खालिक की खोज में क्यों व्यर्थ हैरान हो रहा है ? जरा उसे अपने दिल के महल में तो तलाश !

ऋग्वेद ६।२७।३ में बतलाया गया है कि परमात्मा की शक्ति, उसकी महिमा, उसका ऐश्वर्य आदि इतना अपार है कि किसी को भी उसका अन्त ज्ञात नहीं हो सकता। वेद का मन्त्र है—

नहि नु ते महिमनः समस्य न मधवन्मघस्त्वस्य विद्म।

न राघसो राघसो नूतनस्येन्द्र नकिर्द्वंश इन्द्रियं ते ॥

हे (मधवन् इन्द्र) धनवान् प्रभो ! (ते समस्य महिमानः) तेरी सम्पूर्ण महिमा का (नहि विद्मा) ज्ञान हमें नहीं है। तेरे (मधवत्त्वस्य न विद्म) ऐश्वर्य का भी पूर्ण ज्ञान हम नहीं कर सकते। (नूतनस्य राघसो राघसः) तेरी नूतन सिद्धियों का भी हमें ज्ञान नहीं है। (इन्द्र) हे भगवन् ! (ते इन्द्रियम्) तेरी शक्तियों का भी (न किः ददूशे) हमें दर्शन नहीं हुआ है।

ऋग्वेद ६।१८।१२ में कहा है—

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेदिवो ररण्यो महिमा पृथिव्याः।

नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः॥

(तुवि-द्युम्नस्य) अत्यन्त तेजस्वी (स्थविरस्य) स्थिर और (घृष्वेः) दुष्टता को पीसनेवाले ईश्वर की (महिमा) महत्ता द्युलोक और पृथिवीलोक की मर्यादाओं से बाहर (ररण्यो) फैली है। (न अस्य शत्रुः) इस ईश्वर का कोई शत्रु नहीं है। (न अस्य प्रतिमानं) न इसकी कोई प्रतिमा है। (पुरुमायस्य) अनन्त ज्ञानवाले (सह्योः) और अनन्त शक्तिवाले बलवान् ईश्वर को छोड़कर और कोई (प्रतिष्ठिः) आश्रय (न) नहीं है। तब ही एक सबका आश्रय है।

ऋ० १।५२।१३ में बताया गया है—

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।

विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्॥

अर्थात्—हे जगदीश्वर (त्वम्) तू (भुवः पृथिव्याः प्रतिमानम्) आकाश और भूमि के परिमाण का कर्त्ता तथा (बृहतः) महाबली (ऋष्ववीरस्य) महाभुजयुक्त जगत् तथा महावीर मनुष्य का (पतिर्भूः) पालक है और (अन्तरिक्षम्) सम्पूर्ण अन्तरिक्ष [अवकाश] को एवं (सत्यम्) अविनाशी जीव तथा प्रकृति को (महित्वा) अपनी महती व्याप्ति से (अद्धा आप्रा) साक्षात् पूर्ण कर रहा है। सचमुच (त्वावान्) तुझ जैसा (अन्यः) दूसरा (न कि) नहीं है।

ऋग्वेद के ७।३२।२३ में आया है—

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।

अश्वायन्तो मधवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥

हे (मधवन् इन्द्र) ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! (दिव्यः) द्युलोक में उत्पन्न और (पार्थिवः) पृथिवी पर उत्पन्न (त्वावान् अन्यः) तेरे सदृश कोई दूसरा (न जातः) नहीं हुआ और (न जनिष्यते) नहीं होगा। (अश्वायन्तः) घोड़ों की (वाजिनः) बल और अन्न की (गव्यन्तः) गौओं की इच्छा करनेवाले हम (त्वा हवामहे) तुम्हारी ही उपासना करते हैं।

सामवेद २०३ में बताया गया है—

न कि इन्द्र त्वबुत्तरं न ज्यायो अस्ति बृहन् ।

न श्येवं यथा त्वम् ॥

हे (बृहहन् इन्द्र) दुष्टनाशक और विज्ञानैश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! (न कि) न तो कोई (त्वद् उत्तरम्) तुझसे श्रेष्ठ है और (न ज्यायः) न कोई बड़ा है। (न कि) न ही कोई (एवं) ऐसा है (यथा त्वम्) जैसा तू !

इस मन्त्र में प्रभु की श्रेष्ठता और सुन्दरता का कितनी स्पष्ट और सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

‘दादू दयाल’ ने प्रभु की उपासना के लिए उपदेश देते हुए बताया है कि भला देखो तो मनुष्य की मूर्खता ! मन्दिरों में दुनिया-भर के देवताओं को पूजता-फिरता है और देवी माई की मनौती भी मनाता है, पर प्रत्यक्ष निरञ्जनदेव की सेवा-बन्दगी से बेखबर है—

पूजं देव दिहाडिया, महामई मानं ।

परमदेव निरंजना, ताकी सेव न जानै ॥

अथर्ववेद १०।७।३८ में कहा गया है—

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपति क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।

तस्मिञ्छूयन्ते उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥

ब्रह्म जो महत् (सबसे बड़ा) और सबका पूज्य है, जो सब लोगों के बीच में विराजमान और उपासना करने योग्य है, जो विज्ञानादि गुणों में सबसे बड़ा है, जो सलिल (आकाश) का आधार है और उसमें व्यापक तथा जगत् के प्रलय के पीछे भी नित्य निर्विकार रहता है। जिसके सहारे तैंतीस देव ठहरे हुए हैं। जैसे कि पृथिवी से प्रथम अंकुर निकलकर सब डालियों का आधार होता है उसी प्रकार जो प्रभु ब्रह्माण्ड का आधार है वही एक परमेश्वर है।

अन्तरिक्ष, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्रादि आठ वसु हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और आत्मा ये ग्यारह रुद्र हैं। इन सबका आधार वही प्रभु हैं। वेद में कहा है—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणाः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

—यजुर्वेद ३२।४

वह देव सारे कोणों को घेरे हुए विद्यमान है। वह आदि में था। वही सबके गर्भ में रहता है। वही प्रकट हुआ, वही प्रकट होता रहेगा। हे लोगो ! वह सर्वतोमुख होकर तुम्हारे सामने खड़ा है। सचमुच आँखें उठाकर देखिए, प्रकृति का यह जल कितना सीम्य है ! पं० चम्पुपति जी ने प्रभु के इस रूप का वर्णन करते हुए लिखा है “आजकल सकल संसार दिव्य है क्योंकि दिव्य दृष्टि से देखा गया है। वस्तु-वस्तु में परमदेव की झलक, अणु-अणु में ईश की चमक दीखती है। सूर्य ज्योति का पुंज है। यह सारा जगत् ब्रह्ममय है। व्यापक आकाश उससे व्याप्त है। दृढ़ पृथिवी उससे सुदृढ़ है। चमकते तारों की वही द्युति, वही सूर्य चन्द्र की ज्योति है।

चलतों में उसकी गति, स्थितों में उसकी स्थिति है। वही नेता होकर अग्नि का मार्ग-दर्शक है। वही रस होकर वरुण का रसवर्धक है। वही तेज होकर सूर्य का सविता (जनक), वही सर्ववित् उपदेशकों का उपदेष्टा। अग्नि को कौन कहता है ऊपर जा और जल को कौन सिखाता है निम्न स्थल की ओर वह ? इस सबका नियामक वही प्रभु है। संसार के सभी ऋषियों और महर्षियों ने उस परम ज्योति का गान किया है। आइए, हम भी उसको पुकारें, उसका गान करें—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रभरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवैः

वेदैः साङ्ग्यदक्रमोपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः ।

ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा, पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

अन्त में हम इस अनन्य अद्भुत प्रभु से प्रार्थना करते हैं, हे प्राणों के प्राण ! मेरे प्राणों को, मेरे जीवन को अपनी स्नेहसुधा से अनुप्राणित कर दो। मेरे प्राणों को अपनी संजीवनी से उज्जीवित कर दो। मेरी इन्द्रियाँ तुम्हारी अर्चना के फूल बन जाएँ। मेरे प्राण तुम्हारी पूजा के नैवेद्य हों। इससे मुझे नया जन्म, नई शक्ति, नई प्रेरणा प्राप्त हो।

ईश्वर अजन्मा और अनादि है

सत्याश्रयप्रकाश के सप्तम समुल्लास में ईश्वर के विषय में प्रश्नकर्ता ने अनेक प्रश्न पूछे हैं और ऋषि दयानन्द ने उनका उत्तर दिया है। उन्हीं प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी है कि ईश्वर अवतार लेता है या नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया है “नहीं, क्योंकि ‘अज’ ‘एकपात्’ (३४।५३) ‘स पथ्यगाच्छुक्रमकायम्’ (४०।८) ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।” प्रश्नकर्ता पूछता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

—भ० गी० (अ० ४, श्लोक ७)

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है, तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ। उत्तर देते हुए स्वामीजी कहते हैं। यह बात वेद-विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण चाहते हों कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं, क्योंकि ‘परोपकाराय सतां विभूतयः’ परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्नकर्ता ने पूछा कि यदि परमेश्वर जन्म नहीं लेता है तो कंस, रावणादि दुष्टों का वध कौन करेगा ? स्वामीजी महाराज ने जो उत्तर दिया है, उसका भाव यह है कि जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने का सामर्थ्य रखता है और उनकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस, रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह परमेश्वर तो अनन्त गुण-कर्म और स्वभावयुक्त है। क्या जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है उसके लिए कंस और रावण को मारना तथा गोवर्धन पर्वत उठाना बड़े कार्य हैं ? इसके अतिरिक्त यदि कोई कहे कि अनन्त आकाश गर्भ में आया या मुट्ठी में भर लिया तो यह कहना सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है। इससे न आकाश अन्दर आता है और न बाहर जाता है वैसे ही परमात्मा के अनन्त, सर्व-व्यापक होने से उसका आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। आना-जाना वहाँ हो सकता है, जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक न था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला ? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना उचित नहीं। इसलिए परमेश्वर का जाना-आना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिए 'ईसा' आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा समझना चाहिए। राग, द्वेष, क्षुधा, तृष्णा, भय, शोक, दुःख-सुख, जन्म-मरण आदि गुण युक्त होने से मनुष्य थे। वेद ने कहा है—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।

प्रिया पदानि पशवो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥

—ऋ० १।६।३

(न) जैसे (अजः) न जन्मनेवाला परमेश्वर (सत्यैः मन्त्रैः) न टूटनेवाले विचारों से (क्षां दाधार) पृथिवी को धारण करता है, (पृथिवीं द्यां तस्तम्भ) विस्तृत अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अथवा सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों को (तस्तम्भ) गिरने से रोकता है (प्रिया पदानि) प्रीतिकारक प्राप्तव्य पदार्थों को देता है (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयु देनेवाला (पशवः) वन्धन से (निपाहि) सर्वथा छुड़ाता है (गुहा) बुद्धि में स्थित हुआ वह (गुहं) गुह्य पदार्थ को (गाः) जानता है, वैसे ही तू भी है (अग्ने) विद्वान् जीव ! हमें अज्ञानादि से छुड़ाकर प्राप्तव्य की प्राप्ति करा ।

एक अन्य मन्त्र में परमेश्वर को अजन्मा बतलाते हुए कहा गया है—

शन्तो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्वुध्यः शं समुद्रः ।

शन्तो अपां नपात्पेहस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥

—ऋ० ७।३५।१३

अर्थात् (एकपात्) एकपात् (अजः) अजन्मा परमेश्वर (नः) हमारे लिए (शं) कल्याणकारी (अस्तु) हो (वुध्यः अहिः नः शम्) अन्तरिक्ष में होनेवाले मेघ हमारे लिए कल्याणकारी हों। (समुद्रः शं) समुद्र सुखदायी हो (नपात् अपां पेहः)

पादरहित होकर जलों को पार करनेवाली अर्थात् नौका आदि (नः शम्) हमारे लिए सुखकारक हों (देवगोपाः पूशिनः नः शं भवतु) सूर्यादि की रक्षा करनेवाला अन्तरिक्ष हमारे लिए सुखकारी हो।

यह तो विश्वसाम्राट् प्रभु के लिए अजन्मा शब्द का प्रयोग हुआ। इसके अतिरिक्त वह समय और स्थान की दृष्टि से भी सादि नहीं अनादि है। अनादि शब्द का अर्थ है जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो। ईश्वर अनादि भी है अजन्मा भी। ईश्वर का अनादित्व प्रकट करते हुए वेद कहता है—

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥

—सा० पू० ५।२।१

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! (त्वं) तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित है अथवा किसी का शत्रु नहीं है (अनापिः) किसी का बन्धु नहीं है या बन्धुरहित है (अना) तेरा कोई नेता नहीं है अथवा तेरा कोई नर=सेवक=नौकर नहीं है अर्थात् तू अपने कार्यों में किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता है (जनुषा सनात् असि) तू जन्म से सनातन है, अर्थात् तू जन्म आदि से रहित अनादि है (युधा इत्) उद्योग से ही तू (आपित्वं इच्छसे) बन्धुता को स्वीकार करता है।

वयम् त्वामपूर्व्यं स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।

वज्रिं चित्रं हवामहे ॥

—सा० पू० ५।२।१०

हे (अपूर्व्यं) अनादि परमात्मन् (वज्रिन्) पापवारक प्रभो ! (अवस्यवः वयम्) रक्षा के अभिलाषी हम सब (त्वाम् उ) तुझ ही (चित्रं) अद्भुत (स्थूरं) अविनाशी की (हवामहे) कामना करते हैं (न) जिस प्रकार अन्य रक्षाभिलाषी लोग (कच्चित् स्थूरं भरन्तः) किसी महापुरुष का आश्रय करते हैं।

इन वेद-मन्त्रों में ईश्वर को अजन्मा और अनादि शब्दों से सम्बोधित किया गया है और बताया गया है यह अजन्मा ईश्वर इतना शक्तिशाली है कि सम्पूर्ण पृथिवी को धारण करता है, प्रीतिकारक प्राप्तव्य पदार्थों को देता है, यह आयु देता है, यह हमें बन्धनों से छुड़ाता है और संसार के विचित्र रहस्यों को हमें अपनी प्रेरणा द्वारा सिखलाता है। हम प्रार्थना करते हैं कि मेघ, समुद्र, नौका, भूमि और अन्तरिक्ष के साथ-साथ यह परमेश्वर भी हमारे लिए कल्याणकारी हो। वह परमेश्वर अनादि है, वह सर्वशक्तिशाली है, बिना किसी दूसरे की सहायता के वह अपने सम्पूर्ण कार्यों को करता है।

ईश्वर की हम लोग इसीलिए तो उपासना करते हैं कि वह सर्वशक्तिशाली और सर्वनियन्ता है। वह सर्वशक्तिशाली और सर्वनियन्ता तभी हो सकता है जब वह अजन्मा और अनादि हो। जिसका जन्म होगा उसकी मृत्यु भी होगी, जिसका

आदि होगा उसका अन्त भी होगा। यदि हम प्रभु को मरणधर्मा मान लेंगे तो उसके मरने के बाद हमारी कौन सहायता करेगा, कौन हमें हमारे कर्मों के अनुसार फल देगा ? इसी प्रकार यदि परमेश्वर का जन्म होता हो तो उसके जन्म से पहले हमारा कौन रक्षक रहा होगा ? इसलिए ईश्वर का न तो जन्म होता है और न मरण होता है। वह अनादि और अजन्मा प्रभु हमारे जन्म से पहले रहेगा, हमारी सृष्टि से पहले था और वह उसके बाद भी रहेगा अर्थात् उसका और हमारा सम्बन्ध कभी टूटनेवाला नहीं है। पर कभी-कभी मनुष्य अपने पास रहने-वाले व्यक्ति को भी अपने मन से दूर हटा देता है जब वह दूर हटा देता है; तब पास रहते हुए भी वह दूर हो जाता है। अनादि और अजन्मा से जब हम सुख की कामना करते हैं उसका मतलब यह है कि हम प्रभु से अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जब हमारा उस प्रभु के साथ इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि वह हमें चारों ओर और सब कालों में दिखाई देने लगता है तो हमारी कमजोरी, संकीर्णता, भीखता, सन्देह अपने-आप हमसे विदा हो जाते हैं और हमें पूर्ण निर्भयता और शक्ति प्राप्त होती है, जिसका उद्गम परमात्मा से है।

यह ध्यान रखने की बात है कि परमात्मा से हम जितना अपना सम्बन्ध स्थापित करेंगे, जितनी उसकी उपासना करेंगे उतना ही हम अपनी आत्मा में जीवन, सत्य और सौन्दर्य के तत्त्वों का विकास करेंगे, उतना ही हमारी आत्मा में, हमारे जीवन में नई शक्ति, नये साहस, नये बल का संचार होगा और जीवन में अद्भुत पुष्प विकसित हो जाएंगे। मनुष्य की उन्नति उतनी ही अधिक होगी जितना वह परमात्मा के सत्य, त्याग, दया, प्रेम और शक्ति का अपने में स्थापन करेगा। वह मनुष्य कभी महान् न हो सकेगा जो ईश्वरीय शक्ति से अपने को विमुख रखेगा।

ईश्वर से सम्बन्ध-स्थापन का तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति आप अपने कर्तव्यों को पूरा कीजिए। आप मुझसे पूछेंगे कि ईश्वर के प्रति मनुष्य के क्या कर्तव्य हैं और हम उन्हें कैसे पूरा कर सकते हैं ? तो सुनिए, ईश्वर के प्रति कर्तव्य पूरा करने का मतलब है कि जीवन का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करें, उसे बुद्धिमत्ता पूर्वक चलाएँ। ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धि दी है पर दुर्भाग्यवश हम उस प्राप्त बुद्धि का उपयोग नहीं कर पाते हैं ? सोचिए तो सही कि क्या आप अपने खानपान में बुद्धि का उपयोग करते हैं ? यदि आप मद्य, मांस, मछली, अण्डे या इसी तरह की दूषित वस्तुओं का उपयोग करते हैं, अधिक खाते हैं या असमय में खाते हैं तो कहाँ आपने बुद्धि का उपयोग किया और कैसे आपको स्वास्थ्य प्राप्त होगा ? इसी प्रकार क्या आप अपने धन का खर्च बुद्धिमत्तापूर्वक करते हैं ? क्या आप अपनी विद्वत्ता, भाषणशक्ति, शारीरिकशक्ति का प्रयोग लोगों में आशा

और उत्साह का संचार करने के लिए करते हैं ? यदि नहीं करते तो आप न तो परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं और न ऊपर के मन्त्रों में अनादि परमात्मा से जिन वस्तुओं की कामना की है, वे ही प्राप्त कर सकते हैं। प्रभु से सम्बन्ध जोड़िए, आपका भविष्य चमक उठेगा। जब ईश्वर से सम्बन्ध जुड़ जाएगा तो संसार में चमकता भविष्य दिखाई देने लगेगा। बहुत-से मनुष्य रोया करते हैं कि क्या करें, हमारे ग्रह अच्छे नहीं, पर वे यह नहीं जानते कि हमारी सफलता हमसे प्रकट होती है न कि ग्रहों से ! संसार में जो अपने को प्रभु से दूर कर लेता है, वही असफल होता है। वही आदमी अपने को क्षुद्र और हीन मानता है जिसे अनादि प्रभु का सम्बल नहीं—सहारा नहीं।

हम इस अजन्मा और अनादि प्रभु से जितना तन्मय रहेंगे उतना ही जीवन और स्वास्थ्य का प्रवाह हमें प्राप्त होगा और हमारी आधि-व्याधि शान्ति को प्राप्त हो जाएगी। यही अर्थात् ईश्वर के साथ बुद्धिपूर्वक सम्बन्ध जोड़ना ही सब प्रकार की चिकित्सा का, सुख-समृद्धि का रहस्य है। ऐसा कोई स्थायी संयोग नहीं, ऐसा कोई स्थायी स्वास्थ्य नहीं, ऐसा कोई स्थायी सुख नहीं जो इस जीवन के बाहर हो। यदि हम ज्ञानपूर्वक अनादि-अनन्त प्रभु के जीवन के प्रवाह में अपने शारीरिक और मानसिक दिव्य सुख को ठीक तरह स्थिर रख सकें तो यही मनुष्य के कल्याण का परम रहस्य है। पूर्वोक्त मन्त्रों का यही भाव है। याद रखो मनुष्य ईश्वर के गुणों को धारण कर स्वयं ईश्वरीय सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है और वह निर्भय, सुखी और भस्त हो जाता है। इसलिए हमें प्रभु के अनादि और अजन्मा रूप की उपासना करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ईश्वर न्यायकारी और दयालु है

सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में स्वामी दयानन्द जी महाराज ने 'परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है या नहीं ?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है—'है।' प्रश्नकर्ता ने पुनः पूछा कि 'ये दोनों गुण परस्पर-विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया, और दया करे तो न्याय छूट जाए, क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख-दुःख पहुँचाना और दया उसको कहते हैं जो अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना।' स्वामीजी ने कहा—'न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है, क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हो। वही दया कहाती है जो पराये के दुःखों को छुड़ाना और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया

हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिए। उसी का नाम न्याय है, और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए, क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है तो वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर, और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों पर दया प्रकाशित होती है।”

प्रश्नकर्ता ने पुनः प्रश्न किया ‘फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? उन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है, इसलिए एक शब्द का रहना तो अच्छा था। इससे पता लगता है कि ये दोनों एक चीज नहीं।’ स्वामीजी उसी से पूछते हैं कि ‘क्या एक नाम के अनेक अर्थ और एक अर्थ के अनेक नाम नहीं होते? जब एक नाम के अनेक अर्थ और अनेक अर्थों का एक नाम होता है तो शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं। देखो, ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं। इससे भिन्न जगत् में दूसरी बड़ी दया कौन-सी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सबको सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन-छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुःखों से पृथक् कर देना।’

स्वामीजी महाराज ने न्याय और दया का विश्लेषण करने के बाद अत्यन्त सुन्दर रूप में उसका प्रयोजन बतलाया है। वेद भी ईश्वर को न्यायकारी और दयालु मानता है और कहता है—

वधं दुःशंसां अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदन्त्रिणः ।

अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्मिने सद्ये मा रिषामा वयं तव ॥

—ऋ० १।६४।६

हे (अग्ने) तेजस्वी प्रभो! (वधः) वध के साधनभूत शस्त्रों में (दुःशंसान्) दुष्ट (दूढ्यः) दुर्वृद्धिवालों को (अपजहि) ताड़नाओं के द्वारा मार अर्थात् सन्मार्ग दिखा। (दूरे) जो दूर हैं (वा ये) या जो (अन्ति वा) पास हैं तथा (केचित्) जो कोई (अन्त्रिणः) सर्वभक्षण करनेवाले अर्थात् स्वार्थी हैं उनका हनन कर। (अथा) और (यज्ञाय) यज्ञ करनेवाले (गृणते) स्तोता को (सुगं कृध्मि) सुखी कर। हे प्रभो! (तव) तेरी (सद्ये) मित्रता में (वयं मा रिषाम) हम नष्ट न हों।

परमेश्वर दुष्टों को उनके दुष्ट कर्मों का दण्ड देता है और सज्जनों को सुख देता है। दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर लाना उसका उद्देश्य है।

परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। इसलिए वह जानता है कि कौन क्या कर्म कर

रहा है और उसे क्या दण्ड देना चाहिए। वह अपनी सर्वज्ञता से सबके अपराधों को जानकर उसके अनुकूल न्याय करता और भले-बुरे कर्मों का फल देता है। वेद के एक मन्त्र में इस बात को स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है—

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बहिष्मते रन्धया शासदब्रतान् ।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥

—ऋ० १।५।१८

हे प्रभो ! (आर्यान् विजानीहि, च ये दस्यवः) तू आर्यों=श्रेष्ठ कार्य करनेवाले मनुष्यों को जानता है और जो दस्यु=दुष्ट कार्य करनेवाले लोग हैं उनको जानता है, अतएव तू (बहिष्मते) पूजादि सत्यकर्म करनेवाले को (रन्धय) सिद्धियुक्त करता है, और (अब्रतान् शासत्) अब्रतों=पापियों को दण्ड के द्वारा शिक्षा देता है, (शाकी भव) तू ही शक्तिशाली है और (यजमानस्य चोदिता) यज्ञादि कर्म करनेवाले को सत्कर्म में प्रेरित करता है (ते सधमादेषु ता विश्वा इत् चाकन) तेरे सदृश आनन्दभोग के निमित्त मैं उन सभी सुकर्मों को चाहता हूँ।

सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होने से परमेश्वर सबके गुण और दोषों को जानता है और वह उनके अनुसार मनुष्य को दण्ड देता है तथा उसे सुखी करता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए निम्न मन्त्र में कहा गया है—

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत्तत्सत्यमंगिरः ॥

—ऋ० १।१।६

हे (अंगिरः) प्राणों-के-प्राण (अंग) परम प्यारे (अग्ने) सर्वज्ञ प्रभो ! (यत्) जो (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील के प्रति, फलस्वरूप (भद्रं) भलाई, कल्याण (करिष्यसि) करता है। (तत्) वह (तव) तेरा (सत्यं इत्) अटल नियम है।

अर्थात् परमेश्वर का यह अटल नियम है कि जो मनुष्य जैसा करेगा, उसे वंसा फल मिलकर रहेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि अनेक सम्प्रदायों और मतों में पापों को परमेश्वर क्षमा कर देता है, यह मानकर अनेक आडम्बरो का विधान किया गया है। पौराणिकों की इस विषय में मान्यता है कि चाहे आप जीवन-भर लूट-खसोट, व्यभिचार, चोरी, कालाबाजारी और घूस लेते रहिए, निधनों, निर्वलों और गरीबों को सताते रहिए, मरते समय या किसी निश्चित दिन गंगाजी में डुबकी लगा लीजिए या गंगाजल पी लीजिए, तो पापों से छुटकारा हो जाएगा। मुसलमानों में 'हज्जयात्रा' और वहाँ जाकर 'संगे अस्बद' नामक पत्थर को चूमने से पापों के क्षमा हो जाने की मान्यता है। ईसाई मत का पोप तो रोम में पापों को क्षमा करने के लिए पत्रक ही देता था, और ईसा मसीह में यह भी शक्ति मानी गई है कि वे नाम लेने मात्र से पापों को क्षमा कर देंगे। परन्तु वैदिक धर्म की मान्यता इनसे भिन्न है। हमारा सिद्धान्त यह है कि पाप क्षमा नहीं किये जाते।

“अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्” अर्थात् शुभ या अशुभ किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। यही तो परमेश्वर का न्याय है। पापों का फल न मिलने की भावना का ही तो फल है कि सब सोचते हैं कि यदि गंगास्तान, हज्जयात्रा या ईसा में विश्वास लाने से दण्ड से मुक्ति हो सकती है, तो क्यों संयम किया जाए? क्यों तप किया जाए? क्यों कष्ट उठाया जाए? यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य दुष्ट और मन्द स्तुतियों से सुख, ऐश्वर्य, आनन्द या धन नहीं प्राप्त करता, हिंसक मनुष्यों को भी लक्ष्मी नहीं प्राप्त होती। इस संसार में सुकर्मा मनुष्य ही धन प्राप्त करता है। इसलिए हमें ईश्वर के इन गुणों का ध्यान रखना चाहिए, और स्वयं न्यायकारी और दयालु बनने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रभु तो न्याय करते हुए अपराधियों के प्रति भी दया करता है। वेद कहता है—

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।

अनुव्रतान्यदितेऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

—ऋ० ७।८७।७

(यः) जो प्रभु (आगः) अपराध (चक्रुषे चित्) करनेवाले के प्रति भी (मृळयाति) दया बनाये रखता है, (वरुणे) उस सर्वपूज्य परमात्मा के निकट (वयं) हम सब (अनागाः स्याम) अनपराधी होवें, सदैव उसके समीप अपराधरहित होकर रहें। (अदितेः) उस अखण्ड, सर्वव्यापी देव के (व्रतानि अनु) विविध सत्यादि व्रतों के अनुकूल (ऋधन्तः) आचरण करें। हे विद्वानादि समस्त सत्यदेवो! (यूयम्) आप सब (नः) हम उपासकों को (स्वस्तिभिः) कल्याणों से अर्थात् विविध मंगल और आशीर्वाद देकर (पात) रक्षा करें।

एक अन्य मन्त्र देखिए—

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।

अस्य प्रियस्य शर्मण्याहिंसानस्य सश्चिरे ॥

—ऋ० ५।६४।३

यदि (गतिमश्याम्) सद्गति प्राप्त करना चाहें तो (मित्रस्य) स्नेहमय—दयालु प्रभु के (पथा) बताये मार्ग से (यायां) जाऊँ, क्योंकि (अस्य अहिंसानस्य प्रियस्य) इस हिंसा न करनेवाले अर्थात् दयाभावयुक्त परमप्रिय परमेश्वर के (शर्मणि) कल्याणमय मार्ग में, विद्वान् (सश्चिरे) आश्रय पाते हैं। यह परमेश्वर दण्ड देता है, पर हिंसाभाव से नहीं, अपितु कल्याण की भावना से। कल्याण चाहनेवाले को स्वयं भी दूसरों का कल्याण करना चाहिए। अंग्रेजी साहित्य के एक लेखक वाल्टेयर ने बताया है, जिसने मानवसमाज का कुछ भला किया हो, वही महान् है, जिसके द्वारा किसी दुःखी का दुःख कुछ घटा हो, जिसने अपनी भुजाओं को अनार्यों और अबलाओं के उद्धार में लगाया हो, जिसने नये अनुसन्धान करके मानवजाति के प्राण बचाये हों, जिसने सबको अपना भाई समझकर उनके आराम और सुख का

प्रबन्ध किया हो, जिसका दिल मुसीबतजुदा या आफत के मारों को देखकर उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़ता हो, जिसने किसी जाति के कल्याण के लिए अपने को बलिदान कर दिया हो—वही महान् है, और वही प्रभु का सच्चा उपासक है। न्यायकारी प्रभु का उपासक सत्य का उपासक बन जाता है। उसके चरित्र की यह विशेषता हो जाती है कि वह पर्वत के समान दृढ़ रहता है। चारों ओर तूफान उठते हैं, भंभा चलता है, पत्थर बरसते हैं, पर उनका एक रोम भी विचलित नहीं होता। तुर्कों ने कोशूर को इस्लाम कुबूल करने की शर्त पर आश्रय देने की बात कही। तब उस बहादुर ने कहा, 'मृत्यु और लज्जा, इनमें से किसी एक को स्वीकार करने की दुविधा में मैं कभी नहीं पड़ा। एक दिन मैं एक विशाल राष्ट्र का मालिक था, आज अपने पुत्रों के लिए मेरे पास कुछ नहीं। ईश्वर की इच्छा पूरी होने दो, मैं मौत के स्वागत को तैयार हूँ। मेरे ये हाथ खाली हैं, पर इनपर कोई कालिमा नहीं लगी।'।

परमेश्वर के इन गुणों का ध्यान हममें सच्चरित्रता उत्पन्न करेगा। हमारा प्रभाव बढ़ेगा और हम मानवता की सेवा करेंगे। इमर्सन ने कहा है—“मनुष्य का चरित्र स्वयं बोलता है। चोरी से कोई धनी नहीं होता, दान से कभी कोई गरीब नहीं होता। थोड़ा-सा भी अन्याय या झूठ जल्दी ही स्पष्ट हो जाता है। यदि तुम सच बोलोगे और न्याय का व्यवहार करोगे तो सारी प्रकृति और सब प्राणी तुम्हारी मदद करेंगे।”

अतः हमें परमेश्वर के न्यायकारी और दयालु रूप का ध्यान और धारणा करनी चाहिए। याद रखिए, इससे आप जीवन में प्रसन्न हो सकेंगे और शत्रुता, बुरा बर्तव्य, जलन, घबराहट, मार बँठना, घृणा, कठोरता, परेशानी, उद्वेग आदि दूर होंगे। हम अपनी इच्छा से ईश्वर के आदेशों से अधिक प्रेम करने लगेंगे, उनका पालन करने लगेंगे और उस समय सत्य हमारे सामने होगा। किसी को असत्य मार्ग पर चलकर कष्ट न देना हमारा लक्ष्य हो जाएगा। भवत कहता है—

छोड़ नटनागर तुम्हें, जाऊँ कहाँ ?

तुम-सा बरदाता, भला पाऊँ कहाँ ?

कीर्ति दो, धन दो प्रभो ! बल दो मुझे,

पूर्ण हो सब कामना, फल दो मुझे।

गा रही सब बाणियाँ तुमको यहाँ,

भेंट मैं अन्यत्र पहुँचाऊँ कहाँ ?

ईश अन्तर्यामी, नित्य और पवित्र है

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

—ऋ० १०।८२।७

(तं न विदाथ) तुम उसको नहीं जानते, (य इमा जजान) जो इन सबको उत्पन्न करता है । (युष्माकं अन्तरं अन्यत् बभूव) तुम्हारा अन्तर्यामी तुमसे भिन्न है । किन्तु मनुष्य (नीहारेण प्रावृताः जल्प्याः) अज्ञान से ढके हुए होने के कारण वृथा जल्प करते हैं (च) और (उक्थशासः असुतृपः चरन्ति) वातूनी = वकवादी [अपने आपको ब्रह्मा माननेवाले] प्राणमात्र की तृप्ति में लगे रहते हैं ।

मनुष्य के मन-मन्दिर में भगवान् विराजमान रहते हैं परन्तु अपने अज्ञान के कारण अपने अन्दर विद्यमान भगवान् को वह नहीं जान पाता । वह कभी-कभी अपने को ही ब्रह्म मान लेता है और कभी अपने अन्दर विद्यमान ब्रह्म को न जानकर उसे मन्दिरों, मस्जिदों, गिरिजाघरों, जंगलों या पहाड़ों की गुहा में खोजने निकल पड़ता है, परन्तु वह भगवान् उसे वहाँ नहीं मिलता ।

यजुर्वेद के ३१।१६ मन्त्र में वतलाया गया है कि परमात्मा सब पदार्थों का अन्तर्यामी है, परन्तु इससे यह भ्रम होने की सम्भावना भी हो सकती है कि जब वह पदार्थ उत्पन्न होता होगा उस समय ही वह प्रभु भी उस पदार्थ के साथ उत्पन्न होगा, अतः इस मन्त्र में यह भी वतला दिया गया है कि वह परमेश्वर अजायमानः = उत्पन्न न होनेवाला = अजन्मा है, वह जड़ और चेतन सबके भीतर रहता है । मन्त्र है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

—यजुर्वेद ३१।१६

(प्रजापतिः अजायमानः गर्भे अन्तः चरति) सम्पूर्ण का स्वामी प्रभु अजन्मा है और सब चेतन और जड़ पदार्थों के अन्दर विद्यमान है । (बहुधा विजायते) नाना प्रकार का जगत् उसी के सामर्थ्य से उत्पन्न होता है । (धीराः तस्य योनिं परि पश्यन्ति) धीर जन उसकी प्राप्ति के साधनों का भली प्रकार विचार करते हैं अथवा बुद्धिमान् लोग इस जगत् का कारण उसी ब्रह्म को जानते हैं (तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः) उसी में सारे लोक-लोकान्तर रहते हैं ।

इस अन्तर्यामी परमात्मा को विद्वानों ने सनातन या नित्य माना है । नित्य होने के कारण वह उत्पन्न होनेवाली वस्तु में प्रारम्भ से ही—यहाँ तक कि उससे

पूर्व से ही विद्यमान रहता है। वेद ने भी इसका प्रतिपादन किया है और कहा है—

भोग्यो भवद्यो अन्नमदद् बहु ।

यो देवमुत्तरावन्तमुपासात सनातनम् ॥

—अ० १०।८।२२

(यः उत्तरावन्तं सनातनं देवं उपासात) जो अनेक उत्तमगुण युक्त सनातन ब्रह्म की उपासना करता है, वह (भोग्यः भवत्) सांसारिक भोगों को भोगता है और परमात्मा की दया से (बहु अन्नं अदत्) बहुत अन्न प्राप्त करता है। इससे अगले मन्त्र में बतलाया गया है—

सनातनमेनमाहुस्ताद्य स्यात् पुनर्नवः ।

अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥

—अ० १०।८।२३

विद्वान् लोग (एनं सनातनं आहुः) इस परमात्मा को सनातन या नित्य कहते हैं, (पुनः अथ नवः उत स्यात्) किन्तु वर्तमान में वह नया भी रहता है, अर्थात् सनातन होता हुआ भी सदा युवा है। (अहोरात्रे अन्यो अन्यस्य रूपयोः प्रजायेते) दिन और रात, सृष्टि और प्रलय एक-दूसरे की अपेक्षा से होते रहते हैं।

इस पुरातन, नित्य, सनातन प्रभु की उपासना का उपदेश देते हुए वेदमन्त्र कहता है—

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराभ्याङ्गूषं बाधे सुवृत्ति ।

इन्द्राय हवा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥

—ऋ० १।६।१२

(अस्मै इत्ज) इसी (इन्द्राय) प्रभु के लिए (बाधे) शत्रु को हटाने के लिए (सुवृत्ति आंगूषं) उत्तम भाषणयुक्त स्तवन (प्रयंसि) करता हूँ और (प्रय इव) अन्न के समान (प्रभराभि) उसको हृदय में धारण करता हूँ। सब उपासक (धियः मर्जयन्तः) अपनी बुद्धियों को शुद्ध करते हुए (हवा) हृदय (मनसा) मन और (मनीषा) बुद्धि से (प्रत्नाय पत्ये) पुरातन = नित्य = सनातन स्वामी प्रभु के लिए अपने शब्द अर्पण करते हैं।

मनुष्य की प्रार्थना तब सुनी जाती है जब वह शुद्धभाव और पवित्र मनोवृत्ति से की जाती है। वह परमेश्वर स्वयं पवित्र है और पवित्रता, सत्यता को पसन्द करता है, इसीलिए ऋग्वेद ८।६५।७ में कहा गया है कि सब लोग आध्मो, हम सब शुद्ध साम से (शुद्धं इन्द्रं नु स्त्वाम) पवित्र परमात्मा की स्तुति करें और शुद्ध वचनों से अथवा ऋचाओं के द्वारा दोषरहित भगवान् की स्तुति करें। वह पवित्र तथा आश्रयदाता सबको सुख देता है। मन्त्र है—

एतो निवन्दं स्त्वाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

शुद्धं स्वर्गं वा बृध्वासं शुद्ध आशीर्वाग्निममत् ॥

—ऋ० ८।६५।७

अगले मन्त्र में कहा गया है—

इन्द्र शुद्धो न आगाहि शुद्धः शुद्धामिरुतिभिः ।

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्वि सोम्यः ॥

—ऋ० ८।१५।८

अखण्ड ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! पवित्र रक्षाओं के द्वारा शोधक और स्वयं पवित्र तू हमें सब प्रकार से प्राप्त हो । तू शुद्ध धन देता है और पवित्र तथा सौम्य तू हम सबको आनन्दित करता है ।

एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः ।

विश्वा धामानि विश्ववित् ॥

—ऋ० ९।२८।५

अर्थात् यह सर्वज्ञ पवित्र प्रभु सूर्य को प्रकाशित करता है, और वही सर्वव्यापक, सबसे विचार करने योग्य प्रभु सम्पूर्ण तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशयुक्त करता है ।

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है—

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः ।

पुनानस्य प्रभूवसोः ॥

—ऋ० ९।३५।६

अर्थात् जिस प्रभूत ऐश्वर्य-सम्पन्न (पुनानस्य) पवित्र (धर्मणः पतेः) नियमपालक प्रभु के (व्रते) नियम में या व्रत में (विश्वः जनः) सारा संसार (दाधार) अपनी सत्ता धारण कर रहा है, उस पवित्र परमात्मा की भक्ति से अपने मन, वाक्, काम को पवित्र करना चाहिए ।

इस प्रकार ऊपर के मन्त्रों में परमेश्वर को अन्तर्यामी, सनातन और पवित्र बताकर उसकी उपासना करने का उपदेश दिया है । मनुष्य बैठकर राम का नाम लेता है, ओ३म् का जप करता है, परन्तु यदि उसका मन पवित्र नहीं और उसने अन्तर्यामी भगवान् के वास्तविक स्वरूप को समझा नहीं तो उसकी यह प्रार्थना बेकार है । जब हमारा मन किसी की श्रद्धा और भक्ति में लग जाता है तब हमें उसके सिवाय किसी का ध्यान नहीं रहता ।

अकबर बादशाह एक बार नमाज का वस्त्र विछाकर नमाज पढ़ने लगे । इतने में एक स्त्री अपनी चिन्ता में डूबी हुई अपने पति को खोजते हुए इधर-उधर दृष्टि डालती चली जा रही थी । उसे बादशाह का जमीन पर विछा हुआ कपड़ा दिखाई नहीं दिया, और वह उस पर पैर रखती आगे बढ़ गई । बादशाह को क्रोध तो आया पर वे उस समय नमाज पढ़ रहे थे, अतः कुछ बोले नहीं । थोड़ी देर बाद वह अपने पति के साथ लौट रही थी । बादशाह नमाज पढ़ चुके थे । उन्होंने उसे रोका और बोले “तुझे दीखा नहीं—मैं नमाज में था—” प्रभुभक्ति में था । जाएनमाज भी तुझे दिखाई नहीं दिया ? पैर रखती चली गई ? मैं दिल्ली का बादशाह हूँ ।”

युवती ने सब सुना और बोली “अरे वादशाह ! तुम क्या नमाज पढ़ रहे थे ? नमाज का मतलब है अपने प्रियतम की खोज । मैं भी अपने प्रियतम की खोज में जा रही थी । मुझे जाए नमाज नहीं दीखा । मुझे तो केवल मेरा प्रियतम ही सूझ रहा था । तुम्हें मैं कैसे दिखाई पड़ गई ?”

नर राची सूभयो नहीं,
तुम कस लख्यो सुजान ।
कुरान पढ़त बोरे भयो,
नहि राख्यो रहमान ॥

अर्थात् ‘मैं तो अपने पतिदेव की खोज में वेसुघ हो गई थी जिससे मुझे कुछ सूझा नहीं, परन्तु तुम तो प्रभुभजन में लीन थे, तुमने कैसे देख लिया ? मालूम पड़ता है कि कुरान ही पढ़कर बोखला गये हो ? भगवान में अभी प्रीति नहीं हुई ।’ अकबर यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गया ।

वास्तव में हम उस भगवान् को अपना हृदय पवित्र बनाये बिना प्राप्त करना चाहते हैं, अतः हमें उसका शुद्ध रूप दिखाई नहीं देता । हमारे अन्दर विद्यमान रहते हुए भी हम उसे अपने अन्दर न खोजकर बाहर खोजने जाते हैं । हमें वह भगवान् मिलता नहीं, हम भटकते रह जाते हैं ।

मुझे एक घटना याद आ रही है । एक बार एक जेबकतरा बम्बई में एक सेठ के पास आकर रेल में बैठ गया । उसने सेठ से परिचय किया, आत्मीयता बताई और उसके प्रति अपना आदर भाव दिखलाने लगा । सेठ भी समझ गया कि यह कोई उच्चका है । दोनों सावधानी से अपनी चालें चलते हुए कलकत्ता पहुँचे, और जेबकतरे के आग्रह पर दोनों एक ही होटल में ठहरे । सेठ के पास एक हीरा था । वह उसे बेचने के लिए आया था और जेबकतरे को उसके हीरे का पता था, अतः वह उसे हथियाना चाहता था । सेठ का हीरा दो-तीन दिन तक बिका नहीं, अतः वह रोज रात को आकर होटल में रहता और जेब काटनेवाला भी बहाने से वहीं रहने लगा । दोनों रात को अपनी-अपनी फिराक में रहते—एक हीरा बचाने की और दूसरा उसे हथियाने की । एक दिन सेठ ने शाम को आकर कहा “मेरा काम हो गया । आज मैं जा रहा हूँ ।” जेबकतरे ने उसके सामने हाथ जोड़े और बोला “शायद आप जानते न होंगे मैं एक प्रसिद्ध जेबकतरा हूँ । बड़े-बड़ों की मैंने जेबें साफ कर दी हैं, परन्तु आपसे मैं हार गया । गाड़ी में आपका हीरा न ले सका, जब रात को आप सो जाते थे तब मैं आपकी प्रत्येक वस्तु की, जेब की और बक्से की खोज कर लेता था, मुझे वह हीरा कहीं मिला नहीं यद्यपि मैं जानता था कि वह आपके ही पास है । आप कहाँ रखते थे ? मुझे बताइए ।” सेठ जी हँसे और बोले “अरे भाई, जब तुम मेरे पास बैठे तभी मैं समझ गया था कि तुम मेरी तलाशी लोगे । इसलिए शुरू में जब तुम सो जाते थे, तब मैं इसे सफाई से तुम्हारे

कपड़े की जेब में रख देता था। मुझे पता था कि तुम मेरी सब चीजें देखोगे, अपने टेंगे हुए कपड़े नहीं। मैं सुबह उठकर उसे ले लेता था। आज वह बिक गया।”

इसका दार्ष्टान्त यह है—इसी प्रकार परमेश्वर सबके हृदयों में विद्यमान है। वह सनातनकाल से विश्व के कण-कण के अन्दर है। मनुष्य के अन्तःकरण में है, परन्तु मनुष्य उसे खोजने के लिए बाहर भटकता रहता है, इधर-उधर दौड़ता रहता है, पर वह उसे नहीं पाता। उसे पाना है तो दूसरों की जेब न देखकर, अपनी जेब देखो। वह हीरा तुम्हें मिलेगा। इसीलिए कबीर ने कहा है—

कस्तूरी कुण्डलि बसै,

मृग खोजे बन मांहि।

ऐसे घटि-घटि राम हैं,

दुनिया देखे नाहि॥

प्रभु पवित्र है, अतः हमें भी आत्म-परिष्कार करना चाहिए। मनुष्य के लिए आत्मा की शुद्धता सबसे मूल्यवान् वस्तु है। बिना इस शुद्धता के भगवान् नहीं मिल सकते। इस आत्मा की पवित्रता के लिए हमें आत्मा को उच्च बनाना होगा। इसको उच्च बनाने के लिए अपने पड़ोसी से प्यार कीजिए अर्थात् जो कुछ आपको अपने लिए अच्छा नहीं लगता वैसा व्यवहार अपने पड़ोसी से भी मत कीजिए। आत्मा की पवित्रता ही आपके जीवन का निर्माण करती है। अपनी मानसिक शान्ति और अपने स्वास्थ्य का भी मूल्य आपको समझना चाहिए। इनकी प्राप्ति और इनको बनाये रखने के लिए अवश्य प्रयत्न कीजिए। याद रखिए परमेश्वर सुन्दर और पवित्र है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सौन्दर्य ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। पवित्रता और सदाचार की भाँति वह आत्मा का सहचर है। सौन्दर्य मनुष्य के रंग और उसकी बनावट में नहीं, उसके अच्छे कार्यों में निहित है। जब मनुष्य ईमानदारी से रहता है, तो वह जो उसे मिलता है उसे धन्यवादपूर्वक ग्रहण करता है, बहादुरी से कठिनाइयों का मुकाबला करता हुआ कर्तव्यपथ पर डटा रहता है तब वह परम सौन्दर्यवान् प्रभु के दर्शन करता है। सात्त्विक जीवन का सौन्दर्य क्षण-स्थायी नहीं होता, वह सतत प्रवाहिणी भागीरथी है जिसकी स्मृति-मात्र से आदमी पवित्र हो जाता है। सौन्दर्यपूर्ण, पवित्र ईश्वर को प्राप्त करने के लिए मनुष्य का मस्तिष्क शान्त होना चाहिए, उसमें विरक्ति, सन्तोष और निःस्वार्थता की भावना होनी चाहिए। मैं आपसे कहूँगा कि यदि आप अन्तर्यामी, सनातन और पवित्र प्रभु के प्रेम से अपने को प्रभावित करना चाहते हैं तो आप केवल अच्छी बातें ही मुख से निकालें, अच्छी बातें ही देखें-सुनें और सोचें। प्रभु को प्राप्त करने के लिए सरल, निष्कपट और शक्तिशाली बनिये। सफलता तक पहुँचने की राह न सीधी है, न समतल। सफलता प्राप्त करने के लिए निश्चय, इच्छाशक्ति, हिम्मत और श्रम चाहिए। वह मनुष्य जो बढ़कर परिश्रम से कार्य

करता है, उसमें एक स्वाभाविक आकर्षण होता है—ऐसे बहादुर की यात्रा सरल हो जाती है, उसकी आत्मा पवित्र बन जाती है, ऐसे व्यक्ति के समीप प्रभु आ जाते हैं और ऐसे ही प्रभुभक्त, बहादुर, सरल और श्रमी व्यक्ति को संसार प्रणाम करता है, लोग उसके पास खिंचे चले आते हैं। संसार को कुछ दे जानेवाले सभी व्यक्तियों का जीवन सरल, निष्कपट और पवित्र रहा है।

घट-घट व्यापक 'ओ३म्'

'ओ३म्' परमात्मा का मुख्य नाम है। हम इस 'ओ३म्' या प्रभु के जितने निकट होंगे उतनी ही हमारी शक्तियाँ बढ़ेंगी। यदि हम उसके साथ अपनी एकता का अनुभव कर लें तो हमारे जीवन में नया उल्लास, नया उत्साह व शक्ति आ जाएगी। वास्तव में विश्व में एक ही तत्त्व काम कर रहा है, एक ही जीवन, एक ही सत्य वर्तमान है। हम सब उस दैवीय प्रवाह की ओर जा रहे हैं जो ईश्वर तक जाता है। यह भावना हममें एक अलौकिक प्रोत्साहन देती है जिससे हमारे मानसिक दुःख और भय दूर हो जाते हैं। क्यों दूर होते हैं? उस समय हम परमतत्त्व ब्रह्म से, प्रभु से अपना सम्बन्ध समझने लगते हैं और उसकी उपासना हममें तथा उसमें एकता की स्थापना करती है और इस अनुभूति से हमारा जीवन एक अपूर्व अलौकिकता से परिपूर्ण हो जाता है, महान् आनन्द, महान् सन्तोष से भर जाता है।

इस प्रभु की व्यापकता और उससे एकता समझने से पूर्व हमारे मन में यह स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है कि 'यह ब्रह्म है क्या?' इस ब्रह्म का अनेक रूपों में लक्षण किया गया है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में उसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहा है तो 'बृहदारण्यकोपनिषद्' (३।६।५०) में 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' कहा है अर्थात् ब्रह्म सत्य (सत्) ज्ञान (चित्) और आनन्दरूप है अर्थात् वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। इस प्रकार सब गुणों का तीन ही गुणों में समावेश करके वर्णन किया गया है। अनेक स्थानों पर परमेश्वर के परस्पर-विरुद्ध गुणों को एक करके ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि ब्रह्म अणु से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा है। 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' (कठ० २।२०), 'तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके' अर्थात् वह हिलता है और हिलता भी नहीं, वह दूर है और समीप भी है। (ईश० ५) अथवा 'सर्वेन्द्रियगुणान्नासं' होकर भी 'सर्वेन्द्रियविवर्जितं' (श्वेता० ३।१७) है। मृत्यु ने नचिकेता को कहा है प्रभु के सब लक्षणों को छोड़ दो और जो धर्म-अधर्म, कृत-अकृत और भूत-भव्य के परे हो उसे ही ब्रह्म जानो (कठ० २।१४), नामरूपात्मक मूर्त या अमूर्त पदार्थों के परे जो अदृश्य या अवर्णनीय है उसे ही परब्रह्म समझो (बृहद् २।३।६) अधिक क्या कहें, जिन पदार्थों का कुछ

नाम दिया जा सकता है, उन सबसे भी परे जो है, वही ब्रह्म है और ब्रह्म का अव्यक्त, निर्गुण, निराकार स्वरूप दिखलाने के लिए 'नेति नेति' एक छोटा-सा निर्देश, आदेश या सूत्र ही हो गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में उसका बार-बार प्रयोग हुआ है (बृ० ३।६।२६, ४।२।४, ४।२।४, ४।४।५)। इसी प्रकार दूसरी उपनिषदों में भी परब्रह्म के निर्गुण, निराकार, अचिन्त्य रूप का वर्णन पाया जाता है, जैसे 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (तैत्ति० २।६), अदृश्यं (अदृश्यं), अग्राह्यम् (मु० १।१।६) 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' न आँख से, न वाणी से ग्रहण किया जा सकता है। अथवा—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महत्: परं ध्रुवं निचाप्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥

वह परब्रह्म परमेश्वर पंचमहाभूतों के शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणों से रहित, अनादि, अनन्त और अव्यय है। (कठोपनिषद् ३।१५)

यद्यपि परमेश्वर निराकार, अदृश्य, निर्गुण है परन्तु प्रत्यक्ष और अनुमानादि प्रमाणों से परमेश्वर की सत्ता है ही। देखनेवालों को यह परमेश्वर सर्वत्र दिखाई देगा। जरा निगाह उठाओ उसकी पताकाएँ दिखाई देंगी जो उसकी ओर संकेत कर रही होंगी।

फूल की पंखुड़ियों में, तितली के पंखों में, परिन्दों के परों में, बादलों में, इन्द्रधनुष में, प्रभात की ऊषा में, संध्या की छिटकती लाली में वही चित्रकार बैठा अपनी तूलिका से नांना प्रकार के रंग भर रहा है। पवन के झकोरों में, झरनों की झर-झर में, बादलों के गर्जन में, पक्षियों के कलरव में, प्रपातों की झंकार में, मयूरों के नर्तन में, कोयल की कू-कू में, पपीहे की पी-पी में, नदियों की कलकल में वही गवैया बैठा अपने संगीत की सुरीली तान छेड़ रहा है।

ऊषा में किसकी छवि मुस्करा रही है? श्यामल मेघों में किसका स्निग्ध केशपाश लहरा उठता है? मन्द-मन्द बहते मलयानिल में किसका सौरभ-भरा उच्छ्वास है? धान के बहुरंगी खेतों में किसका हरित अंचल लहरा रहा है? रवि-शशि किसके लोल कुण्डल हैं? इन्द्रधनुष किस चितचोर का जादूभरा स्मित है? पृथिवी किसका पग है? अन्तरिक्ष किसका उदर है? बुलोक किसका विशाल भाल है? रोज सवेरे सैकड़ों मील दूर से चलकर आलोकदूत किसका सन्देश कलियों के कान में कहने पुष्पों की क्यारियों में आ पहुँचता है और किस संदेश को मुनकर कलियाँ अपना सुकुमार घूँघट उठाकर सत्वर भाँकने लगती हैं?

आसमान में टिमटिमाते तारों की दीपमाला उसी का स्वागत कर रही है। वृक्षों की मधुर गुहुरानियाँ किसकी महिमा जता रही हैं? ऊँचे खड़े पहाड़ों की गगनचुम्बी चोटियाँ किसकी ऊँचाई पाने के लिए उछल रही हैं? अगाध समुद्र की अचिन्तनीय गहराई किसका गाम्भीर्य प्रकट कर रही है। पत्ते-पत्ते की विचित्र

रचना में उसी शिल्पी की शिल्पकला का चमत्कार है। सूर्य का उष्ण प्रकाश और चन्द्र की शीतल चाँदनी उसी वैज्ञानिक का आविष्कार है। सूर्य के प्रकाश में, चन्द्र की चाँदनी में, तारों की टिमटिमाती ज्योति में, विद्युत् की चमक में, अग्नि के तेज में, प्रभात की लाल ऊषा में, सन्ध्या की रंगीली छटा में उसी ज्योतिस्वरूप की ज्योति जगमगा रही है। इस सम्पूर्ण विश्व में वह प्रभु ही प्रभु विद्यमान है। सभी शक्तियाँ उसी की खोज में हैं। तभी तो 'प्रसादजी' ने कहा है—

महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।

ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते वे सन्धान ?

अन्त में वे कहते हैं—

हे विराट् ! हे विश्वदेव !

तुम कुछ हो ऐसा होता भान।

मनुष्य उस प्रभु को प्राप्त करना तो चाहते हैं, परन्तु इस सर्वव्यापक को खोजने के लिए इधर-उधर भटकते रहते हैं। उसके लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं। वह प्रभु सर्वत्र व्यापक है तो आत्मा में तो होगा ही, अतः नानक ने कहा है—

काहे रे बन खोजन जाई

सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई।

पुष्प मध्य ज्यों वास वसत है, मुकुर मध्य ज्यों छाई।

वैसे ही हरि बस निरन्तर, घट ही खोजो भाई॥

और जब परमेश्वर के घट-घट व्यापक रूप को हम जान लेंगे तो उस समय अपने और पराये का भेद मिट जाएगा, शत्रु और मित्र की समस्या हल हो जाएगी। सन्त कवि हरिदास कहते हैं—

अब हों कासों बँर करों ?

कहत पुकारि प्रभु निज मुख से,

घट घट हों विहरों।

कहो अब मैं किससे बँर करूँ, जबकि मेरे प्रभु खुद पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि “घट-घट में मैं ही विहार कर रहा हूँ।”

ईशोपनिषद् या यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में कहा गया है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

इस ब्रह्माण्ड में जो जगत् है वह सब ईश्वर के निवास करने योग्य है, ईश्वर इसके अणु-अणु और कण-कण में विद्यमान है। ईश्वर इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में साधिकार वसा हुआ है। कैसे ? ‘सूत्रे मणिगणा इव’ जैसे घागे में मणियाँ गुंथी हुई होती हैं। वेद में कहा है ‘स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु’ (यजु० ३२।८) वह परमात्मा सभी प्रजाओं में ताने-बाने के समान ओत-प्रोत है।

किसी उर्दू के कवि ने लिखा है—

तू हर जर्रे में पिन्हा है, जहाँ तुझमें समाया है।

मुक्त्यद इक जगह या रब तू हरगिज हो नहीं सकता ॥

ईश्वर की सर्वव्यापकता के विषय में मुण्डकोपनिषद् कहती है—

ब्रह्म वेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्म वेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥

यह अमृतरूप ब्रह्म ही आगे है, वही पीछे है, वही दाहिनी ओर है और वही बाईं ओर है। वही नीचे और ऊपर फैला हुआ है। यह सारा विश्व ब्रह्म से ओत-प्रोत है। जो कुछ श्रेष्ठतम है, वह ब्रह्म का प्रकाश है।

वेद में कहा है—

सविता पश्चाद् सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।

सविता नः सुवतु सर्वताति सविता नो रास्तां दीर्घमायुः ॥

—ऋ० १०।३६।१४

सर्वोत्पादक परमात्मा पीछे की ओर है और आगे की ओर भी। वही सर्वप्रेरक प्रभु ऊपर की ओर है और वही नीचे भी है। यह सर्वप्रेरक और सर्वव्यापक प्रभु हमें इष्ट पदार्थों की ओर धर्म जीवन प्रदान करे।

विश्वतश्चक्षुस्तु विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुस्तु विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्वावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

यजु० १७।१६

उस परमात्मा की सब ओर आँखें हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर पैर हैं। वह देव क्रियाशील परमाणु आदि से सूर्य और पृथिवीलोक को कार्यरूप में प्रकट करता हुआ अनन्त बल-पराक्रम से सब जगत् को प्राप्त हो रहा है। तुलसीदास कहते हैं—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।

प्रेम ते प्रकट होइ मैं जाना ॥

ईश्वर की सर्वव्यापकता से क्या लाभ है ? वेद व्यास कहते हैं—

एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न दुच्छयं वेत्सि मुनि पुराणम् ।

यो वेदिता कर्मण पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥

मैं अकेला हूँ तू ऐसा मानता है, हृदय में निवास करनेवाले परमात्मा को तू नहीं जानता। ये प्रभु तो तेरे सब पापकर्मों को जानते हैं। अरे, तू उन्हीं के समक्ष पाप करता है ?

यज्ञ के प्रारम्भ के मन्त्रों में उपासक कहता है—

अमृतोपस्तरणमसि ।

ईश्वर हमारे नीचे का विस्तरा है।

अमृतापिधानमसि ।

प्रभु हमारे ऊपर का ओढ़ना है।

जब इस प्रभु की व्यापकता का हम वास्तव में सबमें अनुभव कर लेते हैं तब हम सभी पापों और बुराई तथा द्वेष से बच जाते हैं। गीता कहती है—

सर्वभूतस्य मात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । —गीता ६।२६
सारे प्राणी मुझमें हैं और मैं सबमें हूँ।

ईशोपनिषद् भी इसी बात को कहती है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो नु विजुगुप्सते ॥

जो व्यक्ति सब प्राणियों को अपने में और अपने को सबमें समझता है वह किसी से घृणा नहीं कर सकता। जब हम परमेश्वर को सर्वव्यापक समझेंगे उस समय अपराधों का दण्ड पाने से बचने की प्रवृत्ति का अन्त हो जाएगा और 'दादूदयाल' की भाँति हम भी कहेंगे—

गुनहगार अपराधी तेरे भाजि कहाँ हम जाँहि ।

‘दादू’ देख्या सोधि सब नुम बिन कहि न समाहि ॥

तेरे गुनहगार भागें तो आखिर भागकर जाएँ कहाँ ? छिपने के तो सारे ठौर खोज डाले सरकार ! पर, जहाँ भी गये वहाँ मुझे मौजूद पाया। दादूदयाल ने परमेश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए लिखा है—

दादू देख्यो दयाल को, सकल रह्या भरपूर ।

रोम रोम में रमि रह्या, तू जिनि जाणें दूर ॥

अपने दयालु मालिक को मैं हर जगह मौजूद पाता हूँ, मेरा प्रभु रोम-रोम में रम रहा है। मत समझ कि मेरा स्वामी मुझसे दूर है।

गरीबदास को सर्वत्र प्रभु के दर्शन हो रहे हैं—

साहब तेरी साहिबी, क्या कहूँ करतार,

पलक पलक की बीठि में, पूरन ब्रह्म हमार ।

कबीर ने भी प्रत्येक स्थान पर प्रभु के दर्शन करते हुए कहा है—

सब घट मेरा साइयाँ, सुनी सेज न कोई,

वा घट की बलिहारियाँ, जा घट परगट होई ।

आगे वे कहते हैं—

पावक रूपी साँइयाँ, सब घट रह्या समाई,

चित चकमक लागें नहीं, ताते बुझ बुझ जाई ।

मेरा स्वामी आग की भाँति संसार के प्रत्येक रूप में समाया हुआ है। पर लगन के चकमक से चित्त लगे तब न ! इसी से तो मेरी यह ली बुझ-बुझ जाती है।

इस सर्वव्यापक प्रभु को कौन प्राप्त कर सकता है ? दादूदयाल कहते हैं—

सब घट माही रमि रह्या, बिरला बूझ कोय,

सोई बूझ राम को, जो रामसनेही होय ।

मेरा प्रभु तो हर घट में, हर कण में रम रहा है, पर इस भेद को समझता कोई विरला ही है। इसकी व्यापकता तो वही समझेगा, जो उसके प्रेम के गहरे रंग में रंग गया होगा।

वेदों में भी प्रभु की सर्वव्यापकता का स्थान-स्थान पर प्रतिपादन किया गया है और कहा है :—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥

ऋ० १।२२।२०

(विष्णोः) सर्वव्यापक परमात्मा का (तत्) वह (परमं पदं) परम पद है, जिसको (सूरयः) ज्ञानी लोग (सदा) सदा (पश्यन्ति) देखते हैं। जिस प्रकार (दिवीव) चुलोक में (चक्षुः) जगत् का सूर्यरूपी आँख (आततम्) खोलकर रखा है।

ज्ञानी लोग, वे लोग जिन्होंने परमेश्वर के स्वरूप को समझ लिया है उन्हें परमेश्वर सूर्य की तरह दिखाई देता है।

तद्विप्राप्तो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

ऋ० १।२१।२१

विष्णु का जो परम पद है उसे (विपन्यवः) कवि (विद्वांसः) ज्ञानी (जागृवांसः) जाग्रत् रहनेवाले अर्थात् जो दक्ष होते हैं वे (समिन्धते) प्रकाशित करते हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में परमेश्वर की व्यापकता का उल्लेख करते हुए आनन्द-प्राप्ति का मार्ग भी बताया है—

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिशिचद्विष्णुमनवे वाधिताय ।

तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ॥

—ऋ० ६।४६।१३

(वाधिताय मनवे) बद्ध मनुष्य के लिए अर्थात् उसको पुरुषार्थ का अवसर देने के लिए (यः) जिस (विष्णुः) व्यापक ईश्वर ने (पार्थिवानि) पार्थिव (त्रिरजांसि) तीन लोक (विममे) उत्पन्न किये (तस्य ते) तेरा (शर्मन् उपदद्यमाने) आश्रय प्राप्त करने पर (राया) धन से (तन्वा) शरीर से तथा (तना) पुत्र से (मदेम) हम आनन्दित हो जाएँगे।

यो अग्नौ रदो यो अस्त्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।

य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृषे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वन्नये ॥

—अ० ७।८७।१

जो रुद्र अग्नि में, जो जल में और जो ओषधियों और (वीरुधः) वनस्पतियों में (आविवेश) व्यापक है। (यः) जो (इमाः विश्वा भुवनानि) इन सब भुवनों को (चाक्लृषे) रचता है (तस्मै अग्नये रुद्राय नमः अस्तु) उस अग्निरूप रुद्र के लिए मेरा नमस्कार है।

इसमें रुद्र की व्यापकता का उल्लेख किया गया है। रुद्र परमात्मा को इसलिए कहते हैं कि वह दुष्टों को रलाता है।

वह दिव्य परमात्मा सब दिशा-उपदिशाओं में पूर्णतया व्यापक है। वह सबसे प्राचीन, सबसे प्रसिद्ध और सर्वत्र विद्यमान है। वह सबके बीच में व्यापक है। वह जैसा इस समय सर्वत्र उपस्थित है, वैसा ही आगे भी रहेगा। वह मुख आदि अवयवों की शक्तियों को, प्रत्येक पदार्थ में व्यापक रहता हुआ, धारण करता है।

यजुर्वेद ३२।४ में आया है :—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

—य० ३२।४

(ह) निश्चय से (एषः देवः) यह देव अर्थात् दिव्य परमात्मा (सर्वाः प्रदिशः) सब दिशाओं-उपदिशाओं में (अनु) साथ-साथ रहता है। (स हः) वह निश्चय से (पूर्वः) प्राचीन और (जातः) प्रसिद्ध है (स उ) वह निश्चय से (गर्भे अन्तः) सबके बीच में है (स एव जातः) वह निकट ही है और निश्चय से (सः) वह ही सदा (जनिष्यमाणः) निकट रहेगा। हे (जनाः) लोगो, वह परमात्मा (सर्वतः मुखः) सर्वत्र मुख आदि अवयवों की शक्ति को धारण करनेवाला (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में (तिष्ठति) रहता है।

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।

तस्मिन्निदं सञ्च वि चैति सर्वं स श्रोतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥

—य० ३२।८

(वेनः) जानी मनुष्य (तत्) उस (गुहानिहितं) गुप्तस्थान में अथवा बुद्धि में रहने-वाले तथा (सत्) त्रिकालाबाधित नित्य ब्रह्म को (पश्यत्) देखता है (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वं) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रय को (भवति) प्राप्त होता है। (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (इदं सर्वं सं एति) यह सब जगत् एकत्रित होता है (च वि एति) और पृथक् भी होता है। (सः) वह परमात्मा (प्रजासु) सब प्रजाओं में (विभूः) व्यापक है और (श्रोतः प्रोतश्च) श्रोत और प्रोत हुआ है।

अर्थात् जानी मनुष्य उस परमात्मा को प्रत्येक पदार्थ में छिपा हुआ, नित्य, सबका आश्रय, सब जगत् में व्यापक और कपड़े में ताने-बाने के समान सब जगत् में व्यापक जानता और अनुभव करता है।

मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सृष्टि बनाने के बाद क्या परमात्मा सृष्टि में स्वयं भी प्रविष्ट हुआ या नहीं? इसका उत्तर देते हुए वेद में कहा और बतलाया गया है कि उस आत्मा से रिक्त कोई भी सृष्टि का अंश नहीं है। इस विषय में स्कन्धसूक्त का एक मन्त्र है—

यत् परममवम यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।

कियता स्कन्धः प्रविवेश तत्र यन्त प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥

—अ० १०।३।८

अर्थात् जो परम, कनिष्ठ और मध्यम विश्व के रूप को प्रजापति उत्पन्न करता है उस त्रिविध जगत् में सर्वाधार आत्मा, कितने से प्रविष्ट हुआ है और जहाँ प्रविष्ट नहीं है वह कितना है ? अर्थात् कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसमें वह नहीं है।

अथर्ववेद १०।७।६ में यह प्रश्न उठाया गया है कि भूतकाल में जिस प्रकार आत्मा का प्रवेश होता था वैसा ही भविष्यकाल में भी होगा या नहीं तथा एक ही पदार्थ को सहस्रधा विभक्त करने पर उसके प्रत्येक अंश में यह आत्मा प्रविष्ट होता है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर है कि वह परमेश्वर सर्वत्र एक जैसा व्यापक है।

सर्वत्र व्यापक, ज्ञानपरिपूर्ण परमात्मा से जीवन में पूर्णता का उदय होता है। इसलिए उस परमात्मा को जानने का हमें यत्न करना चाहिए। अ० १०।८।२६ में देखिए—

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।

उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥

पूर्ण से पूर्ण का उदय होता है, पूर्ण को पूर्ण ही जीवन देता है, आज उसको हम जानें जिससे वह चारों ओर सींचा जाता है।

अन्त में प्रभु की सत्ता को हृदय में धारण करनेवालों में मुख्य स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी के जीवनो को देखते हुए आइए हम गाएँ—

चतुर्दिक् तुम्हीं नाथ ! छाये हुए हो,

मधुर रूप अपना बिछाये हुए हो।

तुम्हीं व्रतविधाता, नियन्ता जगत् के,

स्वयं भी नियम सब निभाये हुए हो।

प्रभो ! शक्तियाँ दिव्य अनुपम तुम्हारी,

तुम्हीं दूर, तुम पास, आये हुए हो।

करें हम भजन पुण्य शुभ कर्म जितने,

सभी में प्रथम स्थान पाये हुए हो।

तुम्हारी करें वन्दना देव ! निशिदिन,

तुम्हीं इस हृदय में समाये हुए हो।

आइए, हम भी सम्पूर्ण हृदय से ईश्वर की सत्ता और सर्वव्यापकता में विश्वास रख प्रभु के समीप जाएँ। वह अपने सौन्दर्य से हमें भी सुन्दर, अपने ऐश्वर्य से ऐश्वर्य-शाली, अपनी उज्ज्वलता से उज्ज्वल बना देगा और उस समय हम 'सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्' बन सकेंगे।

ईश्वर सबका रक्षक है

ऋग्वेद ४।३१।३ में परमेश्वर को संसार का रक्षक बताया गया है और कहा गया है—

अग्नीं धु णः सखीनामविता जरितृणाम् ।

शतं भवास्यूतिभिः ॥

अर्थात् हे ईश्वर तू (नः) हम सब (सखीनां) मित्रों और (जरितृणां) उपासकों का (शतं अतिभिः) सैकड़ों रक्षणों द्वारा (अग्निं सु भविता) सब प्रकार से उत्तम रक्षक (भवामि) है ।

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि परमेश्वर हमारा मित्र है और मित्र अपने मित्र की सदा और सब प्रकार से रक्षा करता है इसलिए परमेश्वर भी हमारी सदा और सैकड़ों प्रकार से रक्षा करता है । यह मित्र साधारण मित्रों की तरह नहीं । इसके पास ऐश्वर्य, धन-धान्य, शक्ति, बुद्धि, बल और पराक्रम सभी विद्यमान हैं । इसलिए यह तो हमारी सभी क्षेत्रों में सब प्रकार से रक्षा करने में समर्थ हो सकता है । वेद ने इसके विषय में कहा है—

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।

तं त्वा भग सर्वं इज्जोहवीति स नो अग पुरेता भवेह ॥

सब ऐश्वर्यों का अधिपति होने से ही परमेश्वर भगवान् कहलाता है । हे देवो ! दिव्य गुणों से युक्त या दिव्य गुणों की ओर चलनेवाले लोगो, उस 'भग' से आओ हम भी दिव्य महिमाशाली बनें । संसार के सभी मनुष्य, सभी प्राणी, सभी जीवधारी उस ऐश्वर्यशाली प्रभु को अपनी रक्षा के लिए, अपने लिए ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए आह्वान करते हैं । हे भग ! वह तुम इस संसार में हमारे पथ-प्रदर्शक बनें ।

भगवान् हमारी कई प्रकार से रक्षा करता है । आर्यसमाज के नेता तथा 'तेज' के सम्पादक श्री देशबन्धु जी गुप्त वायुयान से दिल्ली से कलकत्ता की ओर रवाना हुए । अखिल भारतीय पत्रकार समिति के प्रधान थे । समिति की स्टैंडिंग कमेटी का अधिवेशन हो रहा था । इसमें उन्हें पहुँचना था । इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी के सुपुत्र और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रबन्ध सम्पादक श्री देवदास गांधी भी जाना चाहते थे, किन्तु इन्हें सीट नहीं मिली । बड़ी दीङ्घूप की । उन्होंने कई यात्रियों से कहा । किन्तु किसी ने उनकी बात न मानी । देवदास जी बहुत दुःखी हुए । लोगों को बुरा-भला कहा । किन्तु दूसरे दिन प्रातः ही कुछ अन्धकार में यह वायुयान जब कलकत्ता के पास पहुँचा तो आकाश में धुन्ध बहुत थी । नीचे उतरने का मार्ग इसको नहीं मिला । समुद्र के किनारे नारियल के वृक्षों का जंगल था ।

इन वृक्षों से टकराकर जहाज चकनाचूर हो गया। यह हृदयविदारक सूचना जब दिल्ली पहुँची तो देवदास चौंक उठे। उन्होंने परमेश्वर को धन्यवाद दिया और कहा “धन्य है भगवन् ! तू हम सबकी सैकड़ों रक्षणों द्वारा रक्षा करता है। तू हमारी माँ है जो कभी हमारे सोचे जानेवाले कार्यों में बाधा डालकर हमारे जीवन की नई सुविधाओं का ध्यान रखती है।”

एक कहानी बचपन में पढ़ी थी। एक राजा था। वह अपने मन्त्रियों के साथ शिकार खेलने गया। रास्ते में शिकार न मिलने से वह तथा उसके मन्त्री महोदय अन्य साथियों से विलग हो गये और भटकने लगे। अचानक एक जगह राजा के हाथ में चोट लग गई। खून बहने लगा और पीड़ा होने लगी। उसने अपनी तकलीफ मन्त्री से कही। मन्त्री ने कहा ईश्वर जो करता है ठीक ही करता है। राजा ने इसे अपने ऊपर व्यंग्य समझा और उस जंगल में ही मन्त्री को अपने से पृथक् और सेवा से मुक्त कर दिया। मन्त्री वहाँ से अपना रास्ता लेकर चलता बना। दूसरी ओर राजा बढ़ा—अकेला—बिल्कुल अनजान। भटकते हुए जब वह कुछ दूर गया तो उसे कुछ डाकू मिले। वे देवी की पूजा कर रहे थे और उसपर बलि चढ़ाने के लिए किसी व्यक्ति की आवश्यकता थी। अब क्या था, राजा को देखकर उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और उन्होंने उसे पकड़ लिया। बलि चढ़ाने की तैयारी होने लगी। बलि चढ़ाने से पूर्व उसको स्नान कराया गया। स्नान कराते समय डाकूओं के मुखिया की नजर अचानक उसके हाथ में लगे घावों पर पड़ी और उसने कहा कि यह आदमी बलि के उपयुक्त नहीं, क्योंकि इसके हाथ में घाव है और क्षत-विक्षत व्यक्ति की बलि चढ़ाई नहीं जा सकती, अतः इसे छोड़ दो और दूसरे की तलाश करो। राजा ने अपना सौभाग्य समझा और वहाँ से किसी तरह अपने राज्य में पहुँचा। उसे अनुभव हुआ कि मैंने मन्त्री को हटोकर अन्याय किया है, क्योंकि मेरा हाथ यदि कटा न होता तो आज मैं बलि चढ़ गया होता। शायद मन्त्री ने इसी भाव से कहा था कि ईश्वर जो करता है उसकी कृपा है। मैंने उसे व्यर्थ में ही अलग किया। उसने मन्त्री को खोजकर बुलवाया तथा उससे कहा, “मन्त्रिवर ! आपने ईश्वर की कृपा का जो उल्लेख किया था वह सच था; मेरे लिए तो उसकी कृपा ही हुई परन्तु यह तो बताइये कि जब मैंने अपनी नोकरी से आपको पृथक् किया तब भी आपने उसे ईश्वर की कृपा कहा। इसमें क्या तत्त्व है ?” मन्त्री ने कहा—महाराज ! वह तो स्पष्ट है। डाकूओं को बलि चढ़ानी थी। उन्होंने आपको पकड़ा और आपको धायल देखकर छोड़ दिया। यदि आपने मुझे अलग न किया होता तो मैं भी आपके साथ पकड़ा जाता और आप तो घाव के कारण छूट जाते और मैं बलि चढ़ा दिया जाता। क्या यह ईश्वर की मेरे ऊपर कृपा नहीं ? राजा ने पुनः मन्त्री को नियुक्त किया। उसकी प्रशंसा की। उसका धन्यवाद किया, क्या यह ईश्वर की रक्षा नहीं ? इस प्रकार ईश्वर हमारी सखी

प्रकार से रक्षा करता है। वेद के अनेक मन्त्रों में परमेश्वर की रक्षणशक्ति की बात लिखी है—

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वह्यः।

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि धुमन्तमं रयि दाः॥

—ऋ० ५।२४।१

हे अग्ने ! (नः त्वं अन्तमः) हमारे लिए तू ही समीप है (उत) और तू ही हमारा (शिवः) कल्याणमय और (वह्यः) वरने योग्य (त्राता) रक्षक है। तू (अग्निः) तेजस्वी (वसुः) सबका निवासक (वसुश्रवाः) निवास के योग्य अन्नादि देनेवाला (अच्छा नक्षि) हमें उत्तम प्रकार प्राप्त हो हमें (धुमन्तमं) उत्तम तेजयुक्त (रयि दाः) धन दे।

परमेश्वर हमारे शरीर के प्रत्येक कण में और आत्मा के भीतर भी विद्यमान है, वह हम सबका रक्षक, कल्याण करनेवाला और सबको आधार देनेवाला है, अतः हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। इसलिए किसी ने कहा है—

विश्व-सिन्धु अगम, कौन पार करे भाई !

कोई सिवा दीन-बन्धु पड़े ना दिखाई।

कहो दिव्य 'ओम्' नाम वही एक पूर्णकाम,

कठिनकाल शान्तिधाम जपे सन्त साई।

विश्व-सिन्धु

मिटे सकल राग द्वेष, छूट चलें पाप क्लेश,

करो नाथ ! भोग शेष, मिले अब विदाई।

दूर निकट बार-बार, उठे करुण जन पुकार

वही कुशल करे पार, अन्त घड़ी आई।

तुम्हीं एक दीन शरण, कृपा नाव करो तरण,

छोड़ चलें जन्म-मरण, देर क्यों लगाई॥

विश्व-सिन्धु ०

एक अन्य मन्त्र में परमेश्वर की रक्षणशक्ति का उल्लेख करते हुए बताया गया है—

त सध्रीचीरुतयो वृष्ण्यानि पौत्स्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम्।

समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति॥

—ऋ० ६।३६।३

(तं इन्द्रम्) उस प्रभु के पास (ऊतयः सध्रीचीः) श्रेष्ठ रक्षक शक्तियाँ रहती हैं तथा (वृष्ण्यानि पौत्स्यानि) उत्साहवर्धक शक्तियाँ (नियुतः) साथ नियुक्त होकर (सश्चुः) सेवा करती हैं। (सिन्धवः समुद्रं न) नदियाँ जिस रीति से समुद्र को, उसी प्रकार (उक्थशुष्मा गिरः) बल से युक्त स्तुति-प्रार्थना की वाणी (उरु व्यचसं

आविशान्ति) सर्वव्यापक देव के पास पहुँचती हैं अर्थात् परमेश्वर के पास सब प्रकार का रक्षण और बल है, अतः उसी की उपासना करो ।

ऋग्वेद के ६।४५।३ में बतलाया गया है कि परमेश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति तथा रक्षा के लिए अनेक मार्ग तथा उपाय प्रदान किये हैं और यही कारण है कि लोग उसकी विभिन्न प्रकार से स्तुतियाँ करते हैं ।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वोक्त प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ।

इसकी उत्तम नीतियाँ बड़ी हैं, प्रशंसाएँ पूर्ण हैं और इसकी रक्षक शक्तियाँ कभी क्षीण नहीं होतीं ।

जब हमारा शक्तिशाली रक्षक सदा समीप विद्यमान है तो आइए हम भी निश्चय करें कि अपना जीवन उसी शक्तिशाली प्रभु को अर्पित कर दें । जो कुछ काम करें प्रभु का ध्यान रखकर करें । यदि प्रभु की सेवा में कुछ पत्र-पुष्प चढ़ाना आवश्यक है तो अपनी सारी सम्पदा उसके चरणों में न्यीछावर करने में क्या आनन्द होगा ? जीवन का इससे अच्छा क्या उपयोग हो सकता है कि उसका प्रत्येक क्षण प्रभु की सेवा में लगे ! हमारा प्रत्येक कार्य, विचार और शब्द उसकी सेवा के लिए हो । यह आप आज से ही शुरू कर सकते हैं । आप अपने जीवन का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करें, उसे बुद्धिमत्तापूर्वक चलाएँ । उसका ध्यान सोचने का विषय है—

कैसे तुमको ध्याऊँ ?

शब्दों की सीमा में कैसे,

मैं असीम को लाऊँ,

कभी प्यार से 'पिता' पुकारूँ,

कभी सखा कह तन-मन वालूँ,

पिता बन्धु स्नेही कहकर भी,

पल भर कल ना पाऊँ,

कैसे तुमको ध्याऊँ ?

वरदान देनेवाली वेदमाता

वेद की महिमा अनन्त है । वेद ईश्वर की विमल वाणी है और विश्व के उद्धार और मानव के कल्याण के लिए पृथिवी पर इसका अवतरण हुआ है । वेदप्रवक्ता प्रभु है । उसने वेद द्वारा हमें जो उपदेश दिया है "बहु पारिजात से भी अधिक सुगन्धमय और स्फटिक मणि से भी अधिक उज्ज्वल है । वेद के किसी मन्त्र में कुक्षेत्र का भीरव रव है, किसी में वीरों की भयंकर हुंकार है, किसी में रणचण्डी

का प्रचण्ड अट्टहास है, किसी में समरभूमि का विकट भणत्कार है, किसी में लक्ष्मी का मधुर हास्य है, किसी में वृन्दावन का प्रेमप्रवाह है, किसी में दिव्य-शक्ति का नवल नृत्य है और किसी में ब्रह्म-द्रव का ललित विलास है। श्रुति-भगवती जिसे छू देती है वह अमृत से भी अधिक मधुर बन जाता है, जिसे देख लेती है वह चन्द्रिका से अधिक निर्मल हो जाता है और जिसपर अपने पादपद्म रख देती है वह पद्मकान्त मणि से भी अधिक मूल्यवान् हो जाता है।”

सचमुच वेदज्ञान कितना सुन्दर है ! उस ज्ञान का दाता प्रभु है, अतः उसका मूल्यवान् होना स्वाभाविक है। ऋग्वेद १०।४६।१ में कहा गया है—

अहं वां गृणते पूर्वं वस्वहं ब्रह्म कृणवं माहं वर्धनम् ।

अहं भुवं यजमानस्य चोदिता यज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे ॥

—१०।४६।१

(अहं) मैं (गृणते) उपासक के लिए (पूर्वं वसु वां) मुख्य या पूर्वसंचित धन देता हूँ। (ब्रह्म कृणवं) मैं वेद रचता हूँ, इसलिए, (माहं वर्धनम्) मुझे सब ज्ञानी वधाई देते हैं और मैं ही (यजमानस्य) सत्कर्म करनेवालों को (चोदिता) प्रेरणा करनेवाला (भुवं) होता हूँ और (अयज्वनः) सत्कर्म न करनेवाले को (विश्वस्मिन् भरे) सब युद्धों में, उद्योगों में (साक्षि) पराजय देता हूँ।

इस मन्त्र का भाव यह है कि परमेश्वर ही वेदों की रचना करता है और वह पूर्वकर्मानुसार सबको फल प्रदान करता है।

वैदिक धर्म को माननेवाले तथा सभी आर्य शास्त्र वेद को नित्य मानते हैं। जैमिनीय मीमांसा में ऐसे-ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे वेद की नित्यता सिद्ध होती है। कोपीतकि ब्राह्मण के मत से (१०-३०) वेद-मन्त्र देखे गये हैं, बनाये नहीं। ऐतरेय ब्राह्मण (३-६) से मालूम होता है कि गौरवीत ने सूक्तों वा मन्त्रसमूहों को देखा था। नास्तिक न होते हुए भी नास्तिक समझे जानेवाले सांख्य ने लिखा है—

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।

वेद अपौरुषेय हैं, क्योंकि वेदकर्ता का अभाव है। बृहदारण्यक का कहना है—

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् ऋग्वेदो यजुर्वेदः इत्यादि। अर्थात् वेद भगवान् का श्वास है। श्वेताश्वतर ६।८ का कहना है—

यो वै वेदोश्च प्रहिणोति तस्मै ।

ब्रह्मा को पहले उत्पन्न कर ईश्वर उनको लोक शिक्षा के लिए वेद देते हैं। स्मृति-ग्रन्थों में भी वेद की नित्यता का समर्थन किया गया है। सायणाचार्य भी वेद को नित्य मानते हैं। मनु महाराज ने कहा है “सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति” समूची कलाओं और विद्याओं का मूल भी वेद है। वेद के विषय में कहा जाता है “वेद आर्य सभ्यता एवं वैदिक संस्कृति का मूलाधार है। वेद आर्य ज्ञान-विज्ञान का उज्ज्वल

धाम है। वेद सम्पूर्ण आर्ष एवं वैदिक वाङ्मय का प्राण है। वह भक्तिरस की मन्दा-किनी और उच्च गम्भीर विचारों का सुखद आवास है। वेद में ओज, तेज और वचस्व की राशि है। वेद ब्रह्मगवी का मान और रणाङ्गण का विहाग है। वेद में दिग्दिगन्त को पावन करनेवाले उदात्त उपदेश हैं। वेद में मानवता-विद्रोहियों में हड़कम्प मचानेवाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों, अनाचारियों को ध्वस्त-विध्वस्त करनेवाला आर्षों का ब्रह्मास्त्र है। वेद मानव के समस्त उच्च गुणों की क्रीडास्थली है। वेद में आधिभौतिक उन्नति की चरम सीमा है, आधिदैविक अम्युदय की पराकाष्ठा है, आध्यात्मिक उन्नयन का चूड़ान्त रूप है।” वेद के विषय में मन्त्र कहता है—

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तन्वं च जिन्व ।

विश्वं तदभद्रं यदवन्ति देवा बृहद्देम विदथे सुवीराः ॥

—यजु० ३४।५८

(हे ब्रह्मणःपते) वेदपालक प्रभो ! या ब्रह्माण्डाधिपते (देवाः) विद्वान् (यत्) जिसकी (विदथे) अध्ययन अध्यापनादि-व्यवहार में (अवन्ति) रक्षा करते हैं और (यत्) जिस (बृहत्) श्रेष्ठ का (वयं सुवीराः) हम शोभन वीर (वदेम) उपदेश करते हैं (अस्य) इस (सूक्तस्य) उपदिष्ट वेद के सूक्त का (तन्वं) तू (यन्ता) नियामक है, नियमपूर्वक देनेवाला है (च) और (तनयं) पुत्र तुल्य मनुष्यों को इसका (बोधि) तू बोध कराता है। (तत्) उस (भद्रं) कल्याणमय वेद से (विश्वम्) सम्पूर्ण संसार को (जिन्व) तृप्त कर।

एक दूसरे मन्त्र में ईश्वर वेद का प्रवक्ता है, यह बतलाते हुए कहा है—

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्पुष्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अयंमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

—यजु० २४।५७

(यस्मिन्) जिस परमात्मा में (इन्द्रः) विद्युत्, वायु (वरुणः) जल, चन्द्रमा (मित्रः) प्राण, सूर्य ये सब (देवाः) उत्तम गुणवाले (ओकांसि चक्रिरे) निवास करते हैं। वह (ब्रह्मणः पतिः) वेदरक्षक जगदीश्वर (नूनं) ही (उक्थं) प्रशंसनीय (मन्त्रं) वेद को (प्रवदति) उत्तम रीति से उपदेश करता है।

ईश्वर की यह विमल वाणी मानव का कल्याण करनेवाली है। अथर्ववेद १६।७१।१ में कहा गया है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानौ द्विजानाम् ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।

मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।

परमात्मा कहते हैं हे मनुष्यो ! तुम्हारे लिए मैंने वरदान देनेवाली वेदमाता की स्तुति कर दी है। वह वेदमाता चेष्टाशील द्विजों को पवित्र करनेवाली है। आयु,

प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और ब्राह्मणों के तेज अर्थात् विद्याबलरूप वरों को यह वेदमाता प्रदान करती है। वेदमाता के स्वाध्याय द्वारा प्राप्त होनेवाले इन आयु आदि पदार्थों को (मह्यं) मुझे (दत्त्वा) देकर, इन्हें मदर्पण करके (ब्रह्मलोकम्) मोक्ष को (व्रजत) प्राप्त करो।

वेदमाता ने मनुष्यों को इसलिए उपदेश दिया है कि उन उपदेशों पर चलते हुए आयु, प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और ब्राह्मणों के तेज अर्थात् विद्याबलरूप वर इन सात मंगलों को प्राप्त करते हैं। आठवाँ मंगल ब्रह्मलोक की प्राप्ति है। इन पदार्थों का सेवन हमें स्वार्थबुद्धि से नहीं करना चाहिए। इनका सेवन सत्य, न्याय, ज्ञान आदि के द्वारा ईश्वरीय राज्य स्थापित करने के लिए करना चाहिए। इससे हमारा जीवन उपकारमय हो जाएगा। उपकारमय जीवन मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होगा।

ईश्वर अजन्मा और अनादि है

ईश्वर अजन्मा अर्थात् जन्म न लेनेवाला है। जो वस्तु जन्म न लेगी, उत्पन्न न होगी अर्थात् जिसका निर्माण नहीं होगा वह अनादि होगी, क्योंकि जन्मवाली वस्तु का आदि होता है। वेद में इन दोनों गुणों का समर्थन किया गया है। ऋग्वेद १।६७।३ में प्रभु को 'अज' कहा गया है। वहाँ आया है—

“अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्म छां सन्त्रेभिः सत्यैः” अर्थात् न जन्मने-वाला, अजन्मा परमेश्वर न टूटनेवाले विचारों से पृथिवी को धारण करता है। विस्तृत अन्तरिक्ष या ध्रुलोक अथवा सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों को गिरने से रोकता है।

ऋग्वेद ६।१५०।१४ में परमेश्वर को अजन्मा बतलाते हुए उससे प्रार्थना की गई है कि संसार जिसका एक पाद है अर्थात् संसार जिसकी अपेक्षा से अत्यन्त छोटा है, ऐसा (अजः) अजन्मा परमात्मा (नः) हमारी प्रार्थना को सुने। मन्त्र का भाग है—

“उत नोऽहिर्बुध्न्यः शूणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः”।

ऋग्वेद ७।३५।१३ में कहा गया है—

शन्नो अज एकपादेवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।

शन्नो अपां नपात्पेरस्तु शं नः पूश्निर्भवतु देव गोपा॥

एकपाद अजन्मा परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो, अन्तरिक्ष में होनेवाले मेघ हमारे लिए कल्याणकारी हों, समुद्र सुखदायी हो, पैर न होते हुए भी जलों को पार करनेवाली नौका हमारे लिए सुखकारक हो। सूर्यादि की रक्षा करनेवाला अन्तरिक्ष हमारे लिए सुखकारी हो।

एक अन्य मन्त्र में ईश्वर को अनादि बताया गया है। वहाँ आया है—

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥

—सा० पू० ५।१।२।१

हे इन्द्र ! तू शत्रुरहित है। तू भी किसी का शत्रु नहीं है (अनापिः) बन्धुरहित है। सब तेरे पुत्र हैं, सबका तू जनक है। (अना) तेरा कोई नेता नहीं, तेरा कोई नीकर नहीं। तू अपने कार्यों में किसी की सहायता नहीं लेता है। (जनुषा सनात् असि) तू जन्म से सनातन है अर्थात् तू जन्मादि से रहित अनादि है, (युधा इत्) उद्योग से ही तू बन्धुता को स्वीकार करता है।

एक अन्य मन्त्र में भी उसे अनादि माना गया है—

वयम् स्वामपूर्व्यं स्यूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।

वज्रि चित्रं हवामहे ॥

—सा० उ० १।१।२।१

हे (अपूर्व्यं) अनादे परमात्मन् ! (वज्रिन्) पाप को दूर करनेवाले प्रभो ! (अवस्यवः वयम्) रक्षा के अभिलाषी हम (त्वां उ) तुझ ही (चित्रं) विचित्र (स्यूरं) अविनाशी की (हवावहे) कामना करते हैं (न) जिस प्रकार अन्य रक्षाभिलाषी लोग (कच्चिद् स्यूरं भरन्तः) किसी महापुरुष का आश्रय करते हैं।

वेदों में भगवान् को प्रादुर्भूत होनेवालों में सबसे पहला माना गया है। यों तो भगवान् सदा से ही प्रादुर्भूत हैं अर्थात् वे अजन्मा और अनादि हैं, अतः उनके प्रादुर्भाव का कोई प्रश्न नहीं। पर फिर भी इस सृष्टि की रचना के साथ उनका एक प्रकार का प्रादुर्भाव होता है। जब तक इस सृष्टि में आकर इसकी आश्चर्य में डाल देनेवाली रचना और व्यवस्था पर मनुष्य विचार नहीं करता तब तक उसे भगवान् की सत्ता और महिमा का अनुभव नहीं होता। इस दृष्टि से सृष्टि की रचना के साथ ही भगवान् जन्म लेते हैं। सृष्टि की रचना के साथ प्रकट होनेवाली सब चीजों में भगवान् सबसे मुख्य है। गुणों, शक्ति और महिमा में सृष्टि की और कोई वस्तु भगवान् की बराबरी नहीं कर सकती।

आइए उस अजन्मा और अनादि प्रभु का गुणगान करें—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां, एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

प्रभो ! आप नित्यस्वरूप हैं, चेतनरूप हैं, आप एक हैं, आप भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। आपको जो लोग अपनी आत्मा में साक्षात् करके देखते हैं उनको वास्तविक तथा निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है।

वह ईश्वर सबका बन्धु, पिता और सृष्टिकर्ता है

संस्कृत के एक श्लोक में प्रभु की महिमा का वर्णन करते हुए उन्हें अपना पिता, माता, बन्धु, मित्र और सर्वस्व बताया गया है। बृहत्स्तोत्ररत्नाकर के शब्दों में—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

भगवन् ! आप हमारे माता-पिता हैं, आप ही हमारे बन्धु और सखा हैं। स्वामिन् ! आप ही हमारे विद्या एवं धन हैं। हे नाथ ! आप ही हमारे सर्वस्व हैं और हमारे पूज्य उपास्य देव हैं। आपके स्थान में किसी अन्य का भूलकर भी हम कभी पूजन न करें।

यजुर्वेद अ० ३२ और मन्त्र १० में प्रभु को बन्धु, मित्र और पिता माना गया है—

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि देव भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्तर्धरेयन्त ॥

वह परमात्मा हमारा बन्धु, मित्र और सकल जगत् का उत्पादक तथा पालक पिता है। वही विधाता अर्थात् कर्मफलप्रदाता है। सम्पूर्ण लोगों को तथा, उनके नाम, स्थान तथा जन्मों को जानता है। उसी परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर मुक्त जीव संसार के सुख-दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्ष में स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं।

इस मन्त्र में कहा गया है कि परमात्मा हमारा बन्धु है। वही हमारा सच्चा सहायक और मित्र है। गीता ने कहा है—

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥

ईश्वर इस चराचर जगत् का पिता है, गुरु से भी बढ़कर गुरु और पूजनीय है। हे अतिशय विभूतिवाले ! तीनों लोकों में तेरे समान कोई दूसरा नहीं है, फिर तुझसे बढ़कर कैसे हो सकता है !

यदि मनुष्य ईश्वर को अपना बन्धु, पिता और विधाता समझ ले तो उसे दुःख और क्लेश नहीं हो सकता। फिर तो वह निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। कैसे ? श्री पू० जगदीश्वरानन्द जी द्वारा लिखित एक दृष्टान्त देखिए—

एक समय की बात है एक जहाज समुद्र में जा रहा था कि भयंकर तूफान आने लगा और यान के डूबने का भय उत्पन्न हो गया। जितने व्यक्ति उस यान

में बैठे थे सभी रोने और चिल्लाने लगे। परन्तु एक व्यक्ति जो ईश्वर को पिता समझकर प्यार करता था, उसपर विश्वास रखता था, उसे सच्चा बन्धु और पिता मानता था वह बिल्कुल निर्भय था और उसी प्रकार प्रफुल्लित था जैसा तूफान आने से पूर्व। उसका पुत्र जो यान के डूबने और अपने मरने से बहुत डर रहा था, घबराकर और बहुत दुःखी होकर रोता और चिल्लाता था। पिता ने उसे बहुत समझाया पर उसका रोना और चिल्लाना बन्द नहीं हुआ। तब पिता ने उसे फर्श पर गिरा दिया और म्यान से तलवार निकालकर तथा अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसकी गर्दन पर रख दी और कहा कि यदि तुमने रोना और चिल्लाना बन्द न किया तो तुम्हारी गर्दन अभी घड़ से पृथक् कर दी जाएगी। पिता के इस कार्य से पुत्र का ध्यान तूफान की ओर से हट गया और उसका भय भी जाता रहा तथा वह खिलखिलाकर हँसने लगा। पिता ने और भी क्रुद्ध होकर कहा “मैं तुम्हारी गर्दन अभी तुम्हारे घड़ से अलग करता हूँ।” परन्तु पुत्र को तब भी भय नहीं हुआ; वह और भी अधिक खिलखिलाकर हँसने लगा। तब पिता ने पूछा क्या तुम्हें नंगी तलवार से भी डर नहीं लगता?” पुत्र ने उत्तर दिया कि मुझे डर इसलिए नहीं लगता कि यह तलवार मेरे पिता के हाथ में है, अतः यह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तब पिता ने कहा, “इसी प्रकार मुझे भी पूर्ण विश्वास है कि तूफान और मृत्यु मेरे पिता के हाथ में है जो मुझसे प्रेम करता है और मेरा दृढ़ निश्चय और अटल विश्वास है कि तूफान और मृत्यु से मुझे कोई हानि नहीं पहुँच सकती।” श्री स्वामी जी महाराज लिखते हैं “सुख और शान्ति के अभिलाषियों! आप भी उस प्रभु को अपना सच्चा सखा, बन्धु, पिता, आचार्य और न्यायाधीश मान लो, फिर कैसा दुःख और कैसा शोक! फिर तो आपके हृदय से एक आवाज निकलेगी—

राजी हूँ हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।

यहाँ यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है ॥

वेद में आया है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सुपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥

ऋ० १।१।६

हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर! (सूनवे पिता इव) पुत्र को जैसे पिता प्राप्त होता है उस प्रकार (सः) वह तू (नः) हमको (सु उप आयनः) उत्तम प्रकार प्राप्त (भव) हो और (नः) हमारे (स्वस्तये) उत्तम कल्याणमय अस्तित्व के लिए (सचस्व) हमारे साथ रह।

परमात्मा हमारा पिता है और हम उस परम पिता के ‘अमृतपुत्र’ हैं। पुत्र का अधिकार है कि वह पिता की गोद में बैठे और निर्भय हो। इसीलिए परम

पिता की प्रार्थना की जाती है कि वह हमें पिता के समान प्राप्त होकर सदा हमारे साथ रहकर हमें उन्नति के पथ पर चलाए।

ऋग्वेद १।२६।३ में कहा है—

आ हि ऽमा सून्वे पितापिर्यजत्यापये ।

सखा सख्ये वरेण्यः ॥

जिस प्रकार (पिता सून्वे) पिता पुत्र को (आयजति) सहायता देता है, (आपिः आपये) बन्धु बन्धु की सहायता करता है और (वरेण्यः सखा) श्रेष्ठ मित्र अपने (सख्ये) मित्र को सहायता देता है उसी प्रकार हे ईश्वर ! तू मेरी (आ स्म) सब प्रकार से सहायता कर ।

एक अन्य मन्त्र में बतलाया है—

त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविय ।

अघा ते सुम्नसीमहे ।

—ऋ० ८।१८।११

हे (वसो शतक्रतो) सबका निवास करने तथा सैकड़ों सत्कृत्य करनेवाले ईश्वर ! (त्वं हि नः पिता) तू हम सबका सच्चा पिता है (त्वं) तू ही (माता) माता है (अघा) इसलिए हम सब (ते) तेरा (सुम्नं) उत्तम मन्त्र अर्थात् विचार (ईमहे) करते हैं ।

ईश्वर ही सब मनुष्यों का सच्चा पिता, माता, भाई, मित्र आदि है—

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं आतरं सदमिस्त्सखायम् ।

अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥

ऋ० १०।७।३

मैं (अग्निं) तेजस्वी ईश्वर को (पितरं) पिता (मन्ये) मानता हूँ और उसी (अग्निं) तेजोमय प्रभु को (आपिं) बन्धु (आतरं) भाई (सदं इत् सखायं) सदा के लिए मित्र (मन्ये) मानता हूँ । इस (बृहतः अग्नेः) इस बड़े तेजस्वी देव के (अनीकं) बल की (सपर्यं) मैं पूजा करता हूँ । इसके प्रभाव से (दिवि) द्युलोक में (सूर्यस्य) सूर्य का (यजतं शुक्रं) पूजनीय पवित्र करनेवाला तेज चमक रहा है ।

ईश्वर सभी व्यक्तियों को सुबुद्धि प्रदान करता है, सबको जीवन देनेवाला वही है, इसीलिए सबका पिता वही है और सब उसके सम्बन्धी हैं। वह उत्तम वीर किसी से न दबनेवाला, शक्तिशाली और अपने नियमों का पालन करनेवाला है इसलिए उसके पास सहस्रों प्रकार का धन है—

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।

सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामबाभ्यः ॥

ऋ० १।३१।१०

हे तेजस्वी प्रभो ! तू विशेष बुद्धिवाला है, तू हमारा पिता है, जीवन देनेवाला है,

हम तेरे बांधव हैं। हे न दबनेवाले ईश्वर। उत्तम वीरों से युक्त और नियम के पालक, तेरे प्रति सैकड़ों-हजारों धन प्राप्त होते हैं।

भक्तों को प्रभु धन देता है। भक्तों का वह प्रभु पालक पिता है। वेद कहता है—

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासौ जनानाम्।

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सवमिन्मानुषाणाम्॥

ऋ० ६।१।५

मनुष्य पृथिवी में तुझे बढ़ाते हैं, तेरी महिमा फैलाते हैं, मनुष्यों के दोनों प्रकार के धन भी तेरी महिमा प्रकाशित करते हैं, तू ही तारक है और दुःख से तैर जाने के लिए (चेत्यः) स्मरण करने योग्य तू ही है तथा मनुष्यों का पिता-माता भी सदा तू ही है।

आइए, हम उस प्रभु का गुणगान करें जो हमारा पिता है, जो हमारी माता है, जो हमारी रक्षा करता है, जो हमारा पालन करता है। अन्त में हम उस प्रभु को नमस्कार करते हैं—

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,

नमस्ते चित्ते सर्वलोकाश्रयाय,

नमोऽर्द्धतत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,

नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय।

हे सदा रहनेवाले, जगत् के कारण प्रभो! तुझे नमस्कार हो। सर्वलोक के आश्रय, चेतनस्वरूप! तुझे प्रणाम हो। सुखस्वरूप, मुक्ति के दाता! तुझे हम नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक परब्रह्म! तुझे हमारा बार-बार प्रणाम हो।

ईश्वर की उपासना करनी चाहिए

स्तुति, प्रार्थना, उपासना ये तीन शब्द अलग-अलग भाव बतलाते हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' में स्वामीजी महाराज ने तीनों शब्दों को समझाया है और लिखा है कि स्तुति में ब्रह्म के गुणों का गान किया जाता है, प्रार्थना में ब्रह्म से सद्गुणों, साहस, बुद्धि तथा बल की याचना की जाती है तो उपासना में ब्रह्म से मेल किया जाता है तथा उसका साक्षात्कार किया जाता है। सन्ध्या में हम प्रतिदिन उपस्थान-मन्त्रों से प्रभु के निकट जाने का यत्न करते हैं। उपस्थान शब्द का अर्थ है, समीप बैठना। उपासना शब्द का भी यही अर्थ है। भक्त अब भगवान् के समीप बैठता है; यम, नियम, धारणा, ध्यान और जप-तप के द्वारा मनुष्य अपने प्रभु के बहुत अधिक समीप पहुँच गया है। सन्ध्या में उपस्थानमन्त्रों से पहले व्यक्ति आत्म-

निरीक्षण, मार्जन, अधर्मर्पण तथा मनसा-परिक्रमा के द्वारा ऐसा प्रयत्न करता है कि परमात्म-तत्त्व से उसकी एकता हो जाए, वह उसके समीप पहुँच जाए। शक्ति के समुद्र उस भगवान् के समीप पहुँचते ही जीवात्मा की शक्तियाँ विकसित और महान् बनती हैं। पानी की नन्हीं बूंद अपने-आप में तुच्छ, अशक्त, सीमित, क्षणिक और अनुपयोगी है, परन्तु यही नन्हीं बूंद जब विशाल समुद्र में गिरकर समुद्र के जल के साथ अपने को मिला देती है तो समुद्र के स्वभाव, शक्ति और विशालता को प्राप्त कर लेती है। इसी प्रकार मनुष्य की शक्तियाँ भी तुच्छ एवं सीमित हैं परन्तु उपासना या ब्रह्म-सामीप्य या ब्रह्म-मिलन द्वारा महान् प्रभु से निकट सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर मनुष्य की शक्तियों की योग्यता बढ़ जाती है तथा उसे नई-नई शक्तियों का अनुभव होता है। अरविन्दाश्रम की माताजी ने उपासना के विषय में लिखा है, “आध्यात्मिक जीवन अथवा योग के अभ्यास का उद्देश्य दैवीय चैतन्यता जाग्रत् करना है। दैवीय चैतन्यता जाग्रत् करने का परिणाम मनुष्य की शक्तियों का पवित्र, महान्, यशस्वी तथा पूर्ण होता है।”

उपासना की स्थिति बड़ी आनन्ददायिनी है। उसके विषय में उपनिषत्कार ने लिखा है—

समाधिनिर्घृतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

समाधियोग से जिस पुरुष के आविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, आत्मस्य होकर जिसने परमात्मा में अपना ध्यान लगाया है, अपने परिश्रम, तप और साधना से जो शिखर पर पहुँच गया है और वहाँ पहुँच जो अद्भुत दृश्य देख रहा है, भगवान् की क्रीड़ास्थली का दर्शन कर रहा है, वह समीपता की अनुभूति ही उपासना है। उस सामीप्य की अनुभूति से जो सुख या आनन्द भक्त को होता है, वह वाणी से नहीं कहा जा सकता, वह तो अनुभव की वस्तु है। सूरदास ने ठीक ही कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवे ।

ज्यों गूँगहि मीठे फल को रस

अन्तरगत ही भावै ।

परम स्वाद सब ही को निरन्तर

अमित तोष उपजावै ।

मन बानी को अगम अगोचर,

जो जानै सो पावै ।

इस उपासना की स्थिति तक पहुँचने के लिए १. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार ६. धारणा ७. ध्यान और ८. समाधि आठ अंग हैं। इनका पालन और अभ्यास करना चाहिए। स्वामीजी महाराज ने लिखा है, “जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर

बाह्य-विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश या हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर करके अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवें। जब इन साधन को कोरता है, तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है जो आठ प्रहर में घड़ी-भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त करता है।" इसलिए हमें ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। वेद के एक मन्त्र में यह बतलाया गया है कि उपास्यदेव कैसा हो—

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुमित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।

तं मेघेषु प्रथमं देवयन्तीविश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥

—ऋ० १।७।३

(सः क्रतुः) वह कर्ता है (सः मर्यः) वह मारक अर्थात् संहारक है, (सः साधुः) वह साधक अर्थात् धारक है, वह (मित्रः न) मित्र के समान (अद्भुतस्य रथीः) अद्भुत सृष्टि को रथ बनाकर उसपर आरुढ़ होनेवाला है (मेघेषु प्रथमं तम्) यज्ञों में, मेघा बुद्धि के कर्मों में पहला देव वही है (दस्म) उस दर्शनीय को (देवयन्तीः आरीः विशः) देवता बनने की इच्छा करनेवाले प्रगतिशील प्रजाजन (उपब्रुवते) उपासना करते हैं।

इस मन्त्र का भाव है कि परमेश्वर संसार का रचयिता, धर्ता और नाशक है। जो मनुष्य उस दिव्य शक्ति से एकता स्थापित करना चाहते हैं उन्हें उसकी उपासना करनी चाहिए।

संसार में हमें जितने कष्ट, दुःख और चिन्ताएँ सताती हैं उनका कारण हमारी ईश्वर से दूर हटने की भावना है जिससे हम इस संसार में अपने को दुःखी, चिन्तित, निराश्रित और एकाकी अनुभव करते हैं। जो ईश्वर को अपना पालक और धारक समझता है और जिसे उसके स्वरूप को, जो दुष्टों को हटाता है, विश्वास रहता है, वह सब प्रकार की निराशाओं और कष्टों से ऊपर उठ जाता है। ऐसा मनुष्य जीवन की प्रत्येक असफलता को सफलता में बदलने के लिए सचेष्ट रहता है, संघर्ष को उन्नति की सीढ़ी बनाता है। वह संसार की सम्पूर्ण परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लेता है। सर्वशक्तिमान् प्रभु के सामीप्य से उसकी शक्तियाँ दुगुनी हो जाती हैं और वह सोचने लगता है कि मेरे ऊपर उस सच्चिदानन्द प्रभु का बरदहस्त है जो अनादि-अनन्त है, अतः मुझे धवराने की आवश्यकता नहीं। वह प्रभु के उपास्य रूप से अपने को शक्तिशाली बना लेता है। प्रभु की उपासना से हमें साहस, बल और शक्ति प्राप्त भी क्यों न होगी ? वह है भी तो सबसे अधिक व्यापक, सबसे अधिक प्रभावशाली और सबका सच्चा पालक। वेद ने कहा है—

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥

—ऋ० १।१।११

(समुद्रव्यचसं) समुद्र के समान विस्तृत (रथीनां रथीतमं) वीरों में श्रेष्ठ वीर (वाजानां पति) बलों के स्वामी (सत्पति) सबके सच्चे पालक (इन्द्रं) प्रभु को (विश्वा गिरः) सब स्तुतियाँ (अवीवृधन्) बढ़ाती हैं, उसकी प्रशंसा करती हैं। इसीलिए तो उसके समीप हमें पहुँचना चाहिए। जब हम उसके समीप पहुँच जाएँगे उस समय संसार की कोई विपत्ति या दुःख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। ऋग्वेद में कहा गया है—

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥

ऋ० २।४।१११

जब वह शक्तिशाली भगवान् हमारे ऊपर दयालु होता है, तो पाप हमारे पीछे नहीं पहुँचता, पाप हमारा पीछा नहीं करता और भलाइयाँ हमारे आगे-आगे विद्यमान रहती हैं।

मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि उपासना उस बलिष्ठतम प्रभु की उपासना हमारी परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन कर देती है। आपने सुना होगा कि बहुत-से मनुष्य कहा करते हैं कि उपासना इसलिए एक अच्छी वस्तु है कि उससे मनुष्य में कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करने के लिए हिम्मत और बल प्राप्त होता है। उनका यह भी विचार है कि उपासना मनुष्य में आत्म-विश्वास उत्पन्न करती है और वह विपदाओं से निकल और बच जाता है। पर हम आपसे कहेंगे कि उपासना—सच्ची उपासना—जिसमें कठिनाई में भी ईश्वर ही दिखाई देता है, हमें कठिनाई से मुकाबला करने का बल ही नहीं देती बल्कि कठिनाई की जगह सुख ला देती है। उपासना एक परिस्थिति के बदले दूसरी परिस्थिति लाकर उसे बदल देती है। उपासना हमारे स्वभाव को बदलकर हमें सन्तोष और सुख देती है। उपासना मनुष्य को सफलता के नये रास्ते बताती है, वह केवल पुरानी राह की मरम्मतभर नहीं करती है। शरीर, परिस्थितियाँ, संसार हमारे विचारों के आधार पर बनते हैं, उनका रूप हमारे विश्वास के अनुरूप होता है और यह उपासना हमारे विचारों को उच्च, दृढ़ और संकल्पवान् बनाती है। ईश्वर ने आपको बुद्धि दी है। उपासक की बुद्धि ईश्वरीय प्रेरणा से परिपूर्ण हो जाती है और वह बुद्धि का सफलतापूर्वक उपयोग करता है, यही उसकी सफलता का रहस्य है।

उपासना का लाभ हमें यह होता है कि प्रभु के अपने समीप होने और उसके शक्तिशाली स्वरूप की अपने में स्थिति होने से हममें एक आत्मविश्वास उत्पन्न

होता है। यह आत्मविश्वास ही हमें प्रभु के समीपतम ले आता है और यह आत्म-विश्वास वह शक्ति है जो पहाड़ों को उखाड़ फेंकती है। यह आत्मविश्वास वह महामन्त्र है, जिसकी सहायता से अजेय दुर्ग जीते जा सकते हैं, दुर्गम जंगलों और सूखे रेगिस्तानों को पार किया जा सकता है, बड़े-बड़े आविष्कार किये जा सकते हैं, अलभ्य वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। हमें इंग्लैण्ड के एक यहूदी प्रधान मन्त्री का जीवन स्मरण आ रहा है जिसका नाम था वैंजमन डिजराइली। यह यहूदी था। इसे किसी विश्वविद्यालय की उच्च पदवी प्राप्त न थी, इसका जन्म किसी बहुत बड़े समृद्ध परिवार में नहीं हुआ था। उस समय इसके यहूदी होने के कारण इंग्लैण्ड की जनता भी इसे घृणा की दृष्टि से देखती थी। एक लांड मैलबोर्न से इसकी बातचीत हुई और इसने उसे बताया कि वह एक दिन इंग्लैण्ड का प्रधान-मन्त्री बने बिना न रहेगा। उस समय इंग्लैण्ड में किसी यहूदी के प्रधान मन्त्री बनने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था, अतः उसने इसे समझाया। पर, ऐसा व्यक्ति जो प्रभु में विश्वास कर और लक्ष्य सामने रखकर चलता है, कभी अपने निश्चय से विरत नहीं हो सकता। अनेक बार संसद् का चुनाव हारने के बाद, एक बार वह सफल हुआ। उसके बाद भी संसद् में सदस्य उसके भाषण को सुनने को तैयार न हों, उसे अपना भाषण बीच में रोकना पड़ता था। पर, एक दिन वह इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री बनकर रहा।

वास्तव में मनुष्य अपनी ठीक-ठीक शक्ति को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जबतक कि वह इस बात को मन, वचन और काया से न समझ ले कि वह विश्व के महान् तत्त्व प्रभु की छाया या शरण में है। 'यस्य छायाऽमृतम्' जिसकी छाया अमृत है। यही छाया अमृत है। यह छाया उपासना से प्राप्त होती है। उपासना ईश्वर के साथ हमारा इतना गहन सम्बन्ध जोड़ देती है कि चारों ओर हमें वही दिखाई देने लगता है। उसके गुण हमें घेर लेते हैं। उस समय हमारी कमजोरी, संकीर्णता, भीरुता, सन्देह हमसे विदा हो जाते हैं और उस समय हमें आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। परमात्मा ही इस शक्ति का उद्गम है। यह शक्ति ही जीवन की सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। इसीलिए यह मन्त्र कहता है कि जब वह शक्तिशाली भगवान् हमपर दयालु होता है, तब पाप हमसे दूर हो जाते हैं।

एक मन्त्र में प्रभु से कहा गया है—

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतवत्स्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।

त्वमर्यमा सत्यतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदधे देव भाजयुः ॥

ऋ० २।१।४

हे (देव) देव ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (त्वं) तू ही (राजा वरुणः) राजा वरुण है, तू ही (धृतवत्तः) नियमों का धारण करनेवाला है, (त्वं) तू (दस्म) दर्शनीय और

(ईड्यः) स्तुत्य (मित्रः भवसिः) मित्र है, (त्वं) तू ही (सत्पतिः श्रयमा) सज्जनों का पालक न्यायकारी है। (यस्य) जिसका (सम्भुजं) दान संबंध है, (त्वं) तू (अंशः) अंश नामक देव है, जो (विदथे) यज्ञ में (भाजयुः) पूजनीय होता है।

इस मन्त्र में परमेश्वर को नियमों का धारण करनेवाला बतलाया गया है, और उसके बाद उसे दर्शनीय बतलाते हुए उसकी उपासना का उपदेश दिया गया है। इसके बाद उसकी विशेषता बतलाते हुए उसे मित्र, सज्जनों का पालक और न्यायकारी कहा गया है। इन गुणों के कारण उसकी उपासना करनी चाहिए। प्रश्न उत्पन्न होता है कि परमेश्वर नियमों का धारण करनेवाला कैसे है? यदि वह सर्वशक्तिमान् है, तो उसे नियम धारण करने की क्या आवश्यकता है? सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी महाराज ने इसी प्रकार के प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है, 'सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही अपना काम पूर्ण कर लेता है।' इसपर प्रश्नकर्त्ता उनसे पूछता है—'हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे, क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है।' स्वामीजी महाराज इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि—हम तुमसे पूछते हैं कि वह क्या चाहता है? जो तुम कहो कि वह सब-कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुमसे पूछते हैं परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पापकर्म कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध हैं, तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब-कुछ कर सकता है, वह कभी नहीं घट सकता अर्थात् परमेश्वर भी अपने बनाये नियमों को तोड़ नहीं सकता।' इसलिए प्रभु के उपासक को अपने नियमों के पालन में सदा तत्पर रहना चाहिए। जो अपने नियमों का पालन करता है, जीवन के विकास का मार्ग उसके लिए खुलता चला जाता है। वह अपने मार्ग पर आगे बढ़ता चला जाता है।

प्रभु दर्शनीय है—सुन्दर है। जीवात्मा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। उसे जब प्रभु के उस सुन्दर स्वरूप का दर्शन हो जाता है, तब जीवात्मा न जाने किस बांसुरी के दिव्य स्वरों के संपर्श से पुलकित हो जाती है। निराला भी कहते हैं—

हृदय में कौन जो छेड़ता बांसुरी?

हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी।

लीन स्वरसलिल में मैं बन रही मीन।

स्पष्ट ध्वनि आ धनि सजी यामिनी भली।

प्रियतम, सुन्दरतम ब्रह्म के आह्वान पर प्रेयसी आत्मा अभिसार के पथ पर चल

पड़ती है। उसके सौन्दर्य के सामने सांसारिक मोहजाल, लोकलाज बनकर उसके पैरों को पीछे खींचते हैं, पर प्रियतम के चरणों के सिवा अन्यन्त्र शरण ही कहाँ है ?

और मुखर पायल स्वर करें बार-बार।

प्रियपथ पर चलती सब कहते शृंगार।

शब्द सुना हो तो अब लौट कहाँ जाऊँ ?

उन चरणों को छोड़ और शरण कहाँ पाऊँ ?

महादेवी वर्मा ने कहा है, जीवात्मा जब परमात्मा के सौन्दर्य को देख उससे नाता जोड़ लेता है, तब वह उपासना के चरमलक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, और वह कह उठता है—

मैं तुममें हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश,

मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित-विलास।

संसार की वस्तुओं में जो सौन्दर्य है, जो चेतना है, वह सब उस प्रभु का ही रूप है। हम समझ नहीं पाते, हम उसे दूर ही दूर अनुभव करते हैं। पर, जब हम प्रभु की दिव्य दृष्टि की एक चितवन देख लेते हैं, उस समय उसको जानने की इच्छा प्रबल हो उठती है, उस समय प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के मन में इस रहस्यमय जगत् की सुन्दरता देखकर, अद्भुत भावनाएँ उठा करती हैं। रात्रि के रहस्यमय नक्षत्रों को देखकर मेवों के गर्जन में तड़ित की छवि को देखकर, समुद्र की उठती हुई तरंगों को देखकर हमें विस्मय होता है कि न जाने कौन-सी अज्ञात सत्ता उसे अपने समीप बुला रही है, और उसका परिचय पाने के लिए कबिवर पन्त के शब्दों में उसकी आत्मा कह उठती है—

न जाने कौन आये छुतिमान, जान मुझको अबोध अज्ञान,

मुझाते हो तुम पथ अनजान, फूँक देते छिद्रों में जान,

अहे मुख दुःख के सहचर मौन, नहीं कह सकती तुम हो कौन ?

और जब वह उसके समीप पहुँचता है, तो उसे अपने प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं, और वह कह उठता है—

कभी उड़ते पत्तों के साय, मुझे मिलते मेरे सुकुमार।

बढ़ाकर लहरों से निज हाथ, बुलाते फिर मुझको उस पार।

यह ईश्वर संसार का धारण करनेवाला है, इसलिए हम उसकी अनेक रूपों में प्रणंसा करते हुए नमनपूर्वक उपासना करते हैं, और आशा करते हैं कि वह अपने तेजों से हमें तेजस्वी करेगा, और हमें मानवीय यश से सुशीलित करेगा। ऋग्वेद ५-८ मन्त्र में कहा गया है—

त्वामग्ने धर्षसि विश्वधा वयं गोभिर्गृणन्तो नमसोप सेविम।

स नो जुषस्व सन्निधानो अगिरो देवो मर्तस्य यशसा सुवीतिभिः ॥

—ऋ० ५।८।४

हे तेजस्वी ईश्वर ! सबके धारक ! तुझे हम उपासक अनेक प्रकार की वाणी से प्रशंसा करते हुए नमस्कार से उपासना करते हैं। हे प्राणों के प्राण ! वह तू प्रकाशमान देव मनुष्य को यश से युक्त करके उत्तम तेजों के साथ हमपर प्रीति कर।

ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में उपासना के लाभ बताते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति परमेश्वर के गुणों का वर्णन करने से अपनी वाणी की शोभा बढ़ाते हैं, वे सब धनों से युक्त होते हैं। वे विशेष बलों को प्राप्त करके ऐसे महान् कार्य करते हैं कि उनकी कीर्ति दिगन्त में पहुँच जाती है, और वे लोग स्वयं ही अपनी आत्मिक ज्ञानशक्ति से सब बातें यथावत् जान लेते हैं। मन्त्र है—

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराघसः।

शुभेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्वेषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥

—ऋ० ५।१०।४

अर्थात्—हे आह्लाददायक तेजस्वी ईश्वर ! जो मनुष्य तेरी स्तुतियों से शोभा पाते हैं, वे अश्व आदि धनों से सिद्ध होते हैं। वे मनुष्य बलवान् होकर अपने बलों से ऐसे शुभ कर्म करते हैं, जिससे उनका यश द्युलोक से बढ़ा हो जाता है तथा इस प्रकार का मनुष्य स्वयं सब-कुछ जानता है।

परमेश्वर के उपासक को सब प्रकार के धन, यश और बल प्राप्त होते हैं। भीष्मा साहव ने कहा है—

भजन ते उत्तम नाम फकीर,

छमा सील संतोष सरलचित्त,

दरदवन्त पर-पीर।

परमेश्वर की उपासना का मतलब है, उसके गुणों को अपने में धारण करना। धारण करनेवाला सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करता है। धारण करने का तात्पर्य है कि फकीर नाम की श्रेष्ठता तो केवल भजन के कारण है, मगर फकीर कैसा ? जो क्षमाशील हो, संतोषी हो, सरलचित्त हो, जो दूसरों के दुःख-दर्द को जानता हो, दूसरों की पीर को पहचानता हो।

नानकदेव ने कहा है कि उपासक वही हो सकता है, भगवान् उसी के पास बसते हैं, जिसने पर-धन और पर-स्त्री का त्याग कर दिया है—

परधन परदारा परिहरी,

ताके निकट बसे नरहरी।

‘दरिया’ साहब का कहना है कि वही सच्चा उपासक है, वही सच्चा सन्त है, जिसके दिल में कषट नहीं, पक्षपात नहीं, बाहर और भीतर जिसका रूप एक है। फिर वह व्यक्ति चाहे गृहस्थ हो, चाहे वेपधारी साधु—

‘दरिया’ लच्छन साधु का, क्या गिरही क्या भेख ।

निष्कपटी निरपच्छ रही, बाहर भीतर एक ॥

कबीरदास ने सच्चे प्रभुभक्त साधु या उपासक को लक्ष्य रखकर बताया है कि वही व्यक्ति परमेश्वर का प्रिय है—

साध संतोषी सर्वदा, निर्मल जाके बैन,

ताके दरस रू परस तें, जिय उपजै सुख-चैन ।

जिसकी आत्मा में सदा संतोष-ही-संतोष है, जिसके वचन निर्मल, निर्विकार हैं, वही सच्चा साधु है, उसका दर्शन और स्पर्श करते ही हृदय में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है ।

‘दादूदयाल’ ने तो यहाँ तक कहा है—

हरिभज साफल जीवना, पर उपकार समाइ,

‘दादू’ मरना तहँ भला, जहँ पसु-पंछी खाई ।

अर्थात् जीवन सफल तो तब है कि जब तक जीवित रहे, हरि का भजन करता रहे और परोपकार में अपने मन को पिरो दे, और जब मरे तो ऐसी जगह मरे कि किसी को पता भी न चले, शरीर पशु-पक्षियों के खाने के काम आ जाय ।

जिहि घट दीपक ईश का, तिहि घट तिमिर न होइ ।

उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥

जिस घट के अन्दर ओ३म् का दीपक जल रहा है, वहाँ अज्ञान-अन्धकार प्रवेश नहीं करता । उस परमज्योति के प्रकाश में सारा जगत् दृष्टिगोचर होता रहता है ।

फिर कहते हैं—

सोइ जन साधू, सिद्ध सो, सोइ सकल सिरमौर ।

जिहि के हिरदै हरि बसै, दूजा नाही और ॥

जिसके हृदय में केवल भगवान् का वास है, दूसरी किसी वस्तु के लिए स्थान ही नहीं—वही भक्त है, वही साधु है, वही सिद्ध है और वही सबमें सिरमौर है ।

इतिहास के उदाहरण उठाकर देखिए । आपको पता लगेगा कि शरीर और आत्मा की इच्छाओं में महान् अन्तर होता है । संसार के सिरमौर पुरुषों की अभिलाषाएँ वास्तव में ईश्वरीय प्रेरणा का फल हैं । ये अभिलाषाएँ उनके मन का द्वार खोल देती हैं और वे कठिनाइयों को पार कर संसार को कुछ दे जाते हैं । मनुष्य को प्रगतिपथ पर आगे बढ़ानेवाली वह विलक्षण शक्ति ईश्वर की प्रेरणा है, जो सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को सदा ही आगे की ओर बढ़ाती जाती है । जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय प्रेरणा उठती होगी वह मनुष्य आत्मशक्ति प्राप्त करेगा । आत्मशक्ति उसे साहस, बल या शक्ति देगी । यह शक्ति, यह विश्वास

उसके सामने जीवन में समाज, धर्म, नीति तथा विज्ञान के क्षेत्र में नई प्रेरणा देंगे, और वह अद्भुत कार्य कर समाज का सिरमीर हो जाएगा। 'गोडियर' रबड़ का आविष्कारक बनने से पूर्व संसार में कुछ कर दिखाना चाहता था। उसे ईश्वरीय प्रेरणा थी कि तुम कुछ करने को आये हो और वह सफल हुआ। साइकस डब्लु. फोल्ड के मन में समुद्री तारों की एक अद्भुत कल्पना थी। यदि वह निराशाओं के बावजूद उस कल्पना को आगे न बढ़ाता तो संसार के बड़े-बड़े देश भी बेतार के तार से वंचित रहते। मारकोनी के सपनों के बिना शायद टेलीफोन का आविष्कार एक शताब्दी और रुक जाता। अलैक्जैण्डर ग्राहमबेल ने कठिनाइयों को सहते-सहते अपने कदम न बढ़ाये होते तो टेलीफोन का लाभ हम न उठा पाते। सिलाई की मशीन की कल्पना यदि हलियस हीव ने न की होती तो क्या हम घरों पर अपने कपड़े सिलवा सकते? यदि लिंकन ने ईश्वर पर विश्वास करके स्वतन्त्रता की आवाज न बुलन्द की होती तो क्या अमरीका इतना उन्नत हो पाता? इसलिए जीवन में आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए ईश्वर की भक्ति करो, उपासना करो, उससे आत्मिक शक्ति और प्रेरणा मिलेगी, और उससे जीवन में सफलता भी। मुण्डक उपनिषद् में प्रभु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायाम् ॥

—मुण्डक ३।१।७.

वह महान् है, दिव्य है, अचिन्त्यरूप है, और सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर प्रतीत होता है। दूर से अधिक दूर है, तथापि वह हमारे निकट है। देखनेवालों के अन्दर वह यहीं हृदय की गुफा में छिपा हुआ है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ने और भी बल देते हुए प्रभु के गुणों का वर्णन किया है और उसकी उपासना की शिक्षा दी है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥

—श्वेता० ६।११

वह देव एक है। सभी प्राणियों एवं वस्तुओं में छिपा हुआ है, सर्वव्यापक है, सब भूतों का अन्तरात्मा है, कर्मों का अधिष्ठाता है, वह भूतों का आधार है, साक्षी है, चेतन है, केवल है और निर्गुण है।

इसी उपनिषद् में कहा गया है, बस उसी को जानो, वही उपनिषदों का परम रहस्य है—

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरवापितम् ।
आत्मविद्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत् परम् ॥

वह सर्वव्यापी परमात्मा दूध में भस्म की तरह सारे विश्व में समाया हुआ है।
'आत्मविद्या' और 'तप' उसकी प्राप्ति के मूल हैं। वह ब्रह्मोपनिषद् का परम रहस्य है।

कवि के शब्दों में हम कहेंगे—

वही अचेतन इस शरीर में, एक चेतनामय है।
वही विनश्वर विश्वजगत् में, अमृतरूप अक्षय है।
वही काव्यमय है, सुन्दर है, सर्वशक्तिसम्पन्न महान्।
प्रेमभाव से सीस नवाकर करते सब उसका ही ध्यान।
लूठ जाए दुनिया, तुम केवल बने रहो मेरे स्वामी।
मैं तुममें तुम मुझमें लय हो रमे रहो अन्तर्यामी।



वेद-मीमांसा

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

पाश्चात्य विद्वानों ने वेद के विकृत रूप को प्रचारित करने का षड्यन्त्र किया। तरह-तरह की भ्रान्तियाँ हमारे भारतीय विद्वानों ने भी प्रसारित कीं। आर्यसमाज की ओर से युक्तियुक्त उत्तर समय-समय पर दिये जाते रहे।

सभी प्रकार की भ्रान्त धारणाओं को दूर कर वेद के यथार्थ स्वरूप से अवगत कराने के उद्देश्य से ही इस वेद-मीमांसा की रचना विद्वान् लेखक ने सूत्र की शैली में करके उसका भाष्य किया है।

मूल्य ५०.००

पुस्तक पर महत्वपूर्ण सम्मति—

वेद-मीमांसा का वैशिष्ट्य शब्दों द्वारा दर्शा सकना सम्भव नहीं है। उसके आद्योपान्त मनन द्वारा ही उसका महत्व जाना जा सकता है। ग्रन्थकार के व्यापी अनुसन्धान और गम्भीर वैदुष्य की छाप प्रत्येक विषय के प्रतिपादन में पाई जाती है।

—वेदभाष्यकार प्रो० विश्वनाथ विद्यामातृण्ड

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हैं तो—गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य

लेखक—सुनील शर्मा

१. घर का वैद्य आंवला	३.५०	११. घर का वैद्य दूध-घी	३.५०
२. घर का वैद्य नीम	३.५०	१२. घर का वैद्य दही-मट्ठा	३.५०
३. घर का वैद्य गन्ना	३.५०	१३. घर का वैद्य नमक	३.५०
४. घर का वैद्य प्याज	३.५०	१४. घर का वैद्य हल्दी	३.५०
५. घर का वैद्य लहसुन	३.५०	१५. घर का वैद्य हींग	३.५०
६. घर का वैद्य नीबू	३.५०	१६. घर का वैद्य बेल	३.५०
७. घर का वैद्य तुलसी	३.५०	१७. घर का वैद्य बरगद	३.५०
८. घर का वैद्य पीपल	३.५०	१८. घर का वैद्य मूली	३.५०
९. घर का वैद्य आक	३.५०	१९. घर का वैद्य गाजर	३.५०
१०. घर का वैद्य सिरस	३.५०	२०. घर का वैद्य अदरक	३.५०

बीसों पुस्तकें चार सुन्दर जिल्दों में १४०.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

सहामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रणीत

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुस्ता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षेप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक संख्या बढ़कर एक लाख पहुँच गई है। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूँसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

द्वारा तैयार एक विशिष्ट संस्करण।

इस ग्रन्थ में असम्भव, अश्लील और अप्रासाङ्गिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तार-तम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

□ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी भाँकी देखना चाहते हैं,

□ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

□ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

□ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अंगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूतपुत्र था, क्या जयद्रथ को घोड़े से मारा गया आदि

□ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ४५०) रुपये। तीन भाग।

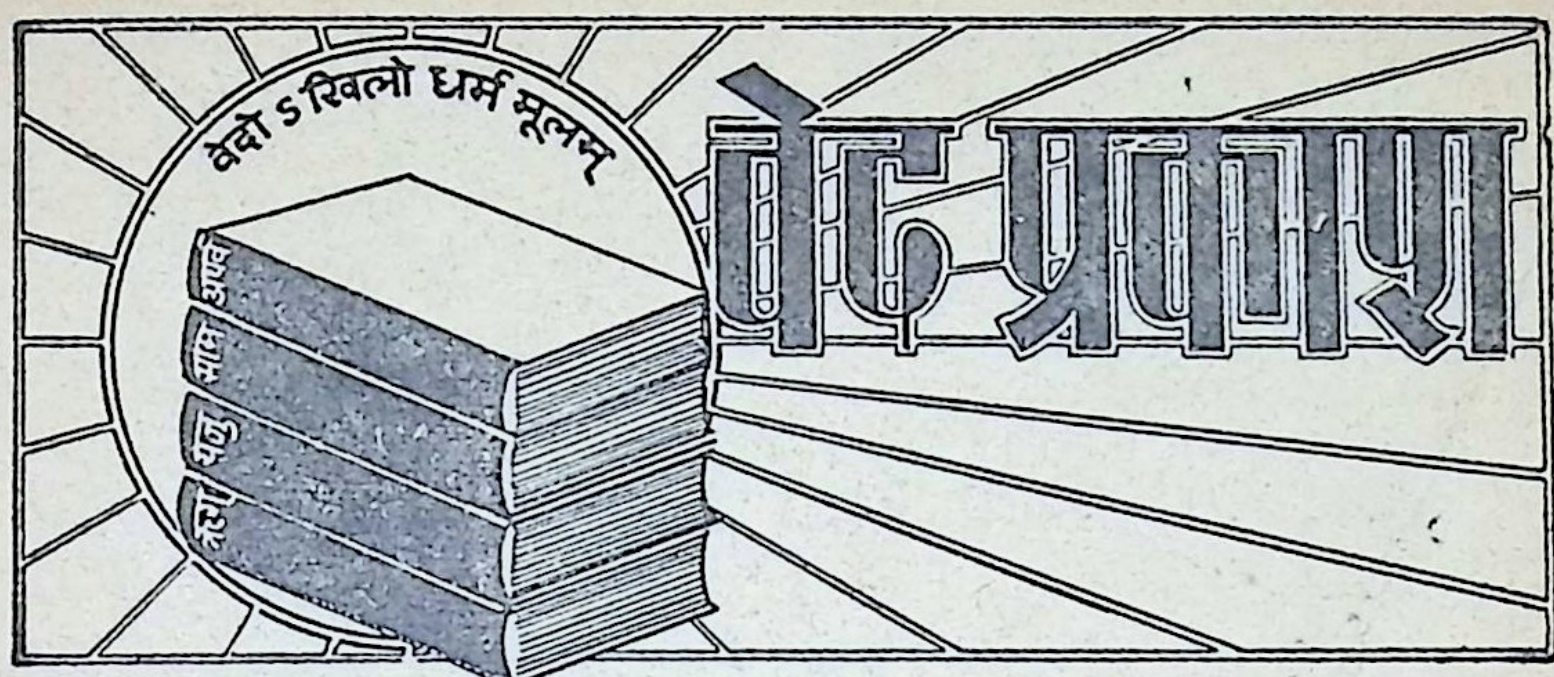
गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥



गो-सेवा का अवसर हाथ से न जाने दें !

मथुरा-वृन्दावन मार्ग पर लगभग ६०० एकड़ जमीन पर हासानन्द वर्मा गोचर भूमि ट्रस्ट स्थित है। यह भूमि आसपास की हजारों गायों और पशुओं को चरने की सुविधा देती है।

इस भूमि पर ट्रस्ट की गोशाला भी है। गोशाला में लगभग ३०० गो-घन हैं। गोशाला के पास खेतीहर जमीन व ट्यूबवेल भी है। इस वर्ष भयंकर वर्षा और ओलों की वर्षा से चारा सड़-गल गया।

व्यवस्थापक श्री रामबाबू बड़े मार्मिक शब्दों में लिखते हैं—

“इधर इस वर्ष अत्यन्त कठिन परीक्षाफल चल रहा है—मार्च ८१२ से भाव ७.५० रुपये मन था—चढ़ते-चढ़ते ३० रुपये मन तक बिका। इधनासे कहने १५ रुपये मन तक आया और अब फिर दैवी प्रकोप के काराथनानुसार सम्भवतः भिन्न हो गया और २० रुपये मन हो गया है। २१ अर इतना कहने मात्रसे तो चुका है—खेतों में पड़े अनाज थो शिग न हो सकने केतुम इस प्यास और भूखके का ओलों का तूफान अभूतपूर्व था— इतने बड़े कैरो, हमें इससे कोई मतलब पहली बार देखे। अपनी जई की फसल खेत्समय यह अवश्य कहो कि “पानी भविष्य की सभी आशा अत्यन्त घूमिल होही कि “भोजन लाओ”। तभी जान ने किसी तरह पूर्ण किया परन्तु अबकी

अपने यहाँ लगभग १६ मन रोजफरने गया और कहने लगा “राम राम” बड़ेने संख्या है—बहुत ही असह्य कि “राम राम”। तो इससे क्या सत्कार और आशी-

में व्यक्तिगत रूप दोपि नहीं। जैसे “राम राम” आदि शब्दोंके प्रयोग से से उबारने के लिए अर्धुभक्ती, इसी प्रकार इन शब्दोंसे सत्कार एवं आशीर्वाद भी दानदात।

चैक मशप ही बताइए, ऐसे अवसरपर किस शब्दका प्रयोग किया मेरे व्यक्तिगत न.

सघन द ऐसा कहो जो वेदप्रतिपादित हो।

वेदप्रकाश

वर्ष ३१, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [जून, १९८२]

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

नमस्ते की व्याख्या

लेखक—स्वर्गीय श्री पण्डित सुखदेव विद्यावाचस्पति

हमारी आर्य जाति का वेद ही एकमात्र स्वतः प्रमाण धर्मपुस्तक है। यही
दीनो ज्ञान है कि आपने आपको आर्य या हिन्दू कहनेवाला कोई भी व्यक्ति
करेगा। वैदिक धर्मी तथा पौराणिक धर्मी, सभीके
वेद ही होना चाहिए। वैसे तो भारतवर्ष के
परन्तु हमें इस लेखमें उन धर्मोंसे कुछ शिकायत
नहीं करते, क्योंकि जब वे वेदोंको श्रद्धाकी
ने वेदों का प्रमाण उपस्थित करके हम क्या
आओ, आज हम इस बातपर विचार करें
सत्कार एवं आशीर्वादसूचक शब्द
आनेमें ही डर लगता है।
हीं, हमारी शिक्षा एक नहीं,
कृता” के विश्रामके लिए
कहता है “नमस्ते”
“सीताराम”,
ने। एकने किया
दण्डवत् और
कहता है ?

भला पूछो तो “राम राम” कहनेवालोंसे कि क्या महाराजा रामचन्द्रजी अपने पिता दशरथको भी सत्कार करते समय “राम राम” ही कहा करते थे और राजा दशरथ भी अपने बेटेको “राम राम” कहकर ही उत्तर देते थे ? जिस समय राधा (जिसके बारेमें सुना गया है कि वह श्रीकृष्ण की विवाहिता पत्नी नहीं थी) और कृष्ण परस्पर बड़ी उत्कण्ठासे चिर प्रतीक्षा के पश्चात् मिलते थे, तो वे भी क्या परस्पर “राधाकृष्ण” ही कहा करते थे ? स्थूलबुद्धि तो यही कहती है कि रामचन्द्र और दशरथ “राम राम” नहीं कहते होंगे और राधा तथा कृष्ण भी परस्पर “राधाकृष्ण” नहीं पुकारते होंगे। यह भी समझ में आता है कि कृष्णने भी कभी किसीका ‘जयगोपाल’ सूचक शब्द से सम्मान नहीं किया होगा।

मिलें परस्पर सम्मान करनेके लिए या आशीर्वाद लेनेके लिए और बोलें किसी स्त्री और पुरुषका नाम ! यह कैसी अप्रासंगिक बात है।

पूर्व पक्षी—महाराजा रामचन्द्र और कृष्ण विष्णुके अवतार थे, अतः वे साक्षात् परमात्मा थे। परस्पर मिलते समय यदि परमात्माका नाम लिया जाए तो उसमें क्या दोष है ?

सिद्धान्ती—एक तो भाई परमात्मा अवतार लेता ही नहीं। यदि “दुर्जनतो-पन्याय” से मान भी लिया जाय कि परमात्मा अवतार लेता है, तब भी तो उस समय वह पुरुष ही बना था। उस पुरुष बने परमात्माका नाम लेना आपके मतमें बुरा नहीं, अच्छा है। तो ठीक रहा, ऐसे पुरुष बने परमात्माका नाम हर स्थान-पर बिना प्रसंगके भी ले लिया करो। लेनेसे शायद पाप तो न हो पर व्यवहार तो नहीं चलेगा। एक मालिकको पानीकी प्यास लगी है और वह अपने नौकरसे कहता है “राम राम”; पतिको लगी भूख और वह लगा अपनी स्त्रीसे कहने “राधाकृष्ण”। भाई ! इन दोनों स्थानों पर आपके कथनानुसार सम्भवतः “राम राम” और “राधाकृष्ण” कहना पाप तो नहीं, पर इतना कहने मात्रसे तो मालिक तथा पति दोनों ही प्यासे तथा भूखे मरेंगे। तुम इस प्यास और भूखके अवसर पर “राम राम” को स्मरण करो या न करो, हमें इससे कोई मतलब नहीं, परन्तु हमारा कहना यह है कि प्यासके समय यह अवश्य कहो कि “पानी लाओ” और भूखके समय यह अवश्य कहो कि “भोजन लाओ”। तभी जान बचेगी।

छोटा अपने बड़ेका सत्कार करने गया और कहने लगा “राम राम” बड़ेने भी आशीर्वादमें दोहरा दिया “राम राम”। तो इससे क्या सत्कार और आशीर्वाद सूचित हो गए ? कदापि नहीं। जैसे “राम राम” आदि शब्दोंके प्रयोग से भूख और प्यास नहीं बुझती, इसी प्रकार इन शब्दोंसे सत्कार एवं आशीर्वाद भी सूचित नहीं होते।

पू०—तो आप ही बताइए, ऐसे अवसरपर किस शब्दका प्रयोग किया जाय ?

सि०—शब्द ऐसा कहो जो वेदप्रतिपादित हो।

हमारा यह दावा है कि वेदोंमें “राम राम” आदि शब्दोंसे कहीं भी सत्कार सूचक शब्दोंका प्रयोग नहीं है। वेदोंमें तो क्या आप सारे प्राचीन संस्कृत साहित्य-को भी पढ़ जाइए, कहीं एक-दूसरेके साथ “राम राम” या “राधाकृष्ण” आदि शब्दोंका प्रयोग नहीं है। पौराणिक धर्मावलम्बियोंको अपने पुराण, महाभारत, तथा रामायण या मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंको भी देखना चाहिए। उनमें कहीं भी इन मनुष्यवाचक शब्दोंका परस्पर सत्कारके लिए प्रयोग विहित नहीं है। सभी वेद, पुराण, इतिहास तथा स्मृति आदि ग्रन्थ और शब्द की आज्ञा देते हैं। आर्य-समाज उसी शब्दका प्रचार करना चाहता है।

पू०—वह शब्द क्या है ?

सि०—वेदादि सत्य शास्त्र तथा पुराणादि ग्रन्थ सभी एक स्वरसे यही कहते हैं कि परस्पर “नमस्ते” शब्दका प्रयोग होना चाहिए।

इस “नमस्ते” शब्दमें बहुतसे प्रमाण देनेसे पूर्व इस शब्दका अर्थ जान लेना आवश्यक है। “नमस्ते” शब्दको दो टुकड़ोंमें बाँटा जा सकता है:—

“नमः—ते”। व्याकरणके जाननेवाले जानते हैं कि “ते” शब्दका अर्थ है “तुम्हारे लिए (ते—तुभ्यम्—तुम्हारे लिए) परिणामतः ‘नमस्ते’ शब्दका अर्थ यह हुआ कि तुम्हारे लिए नमः। अब केवल विवाद है ‘नमः’ शब्द पर। आइये, हम इस ‘नमः’ शब्दके अर्थका भी विवेचन करें। ‘नमः’ शब्दके निम्न अर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं:—

(१) नमः=सत्कार, श्रद्धा, किसीके सामने झुकना।

क—अमरकोषमें आया है ‘नमो नती’। ‘नमस्’ अव्यय ‘नति’ अर्थात् किसीके सामने झुकनेके अर्थमें आता है।

ख—यास्कनिघण्टु ३ : ५ में ‘नमस्यति’ का अर्थ किया है ‘परिचरति’। अर्थात् सेवा करने, सत्कार करनेके अर्थमें नमस्यति शब्द आता है।

ग—सिद्धान्तकौमुदीमें ‘णम’ धातु प्रहृत्य अर्थात् सत्कार अर्थमें आता है।

ग—पं० शिवदत्त तत्त्वबोधिनीकी टिप्पणी में लिखते हैं—

“अपकृष्टत्वज्ञानबोधनानुकूलो व्यापारो नमः पदार्थः”

अर्थात् जब मनुष्य दूसरेके सामने ऐसी क्रिया करे जिससे वह उस दूसरेसे छोटा प्रतीत हो, वही क्रिया ‘नमः’ शब्दका अर्थ है। जैसे जब कोई हाथ जोड़कर माया नंदाकर किसीके सामने झुकता है तो वह उससे छोटा ही प्रतीत होता है। अर्थात् ‘नमः’ करनेवाला दूसरेका सत्कार कर रहा होता है।

(२) नमः=भेंट, त्याग।

क—आष्टे संस्कृत कोषमें ‘नमः’ शब्दका अर्थ किया है—a gift, Present जिसका अर्थ भेंट ही है।

ख—श्री पं० शिवदत्तजी तत्वबोधिनी पर टिप्पणी करते समय लिखते हैं—
'एषोऽर्घः शिवाय नमः इत्यादी त्यागो नमःशब्दार्थः'। शिवके लिए जब अर्घ भेंट
किया जाता हो, वहाँ यदि 'नमः' शब्दका प्रयोग हो तो उसका अर्थ 'त्याग' है।

ग—नमः sacrifice त्याग। आप्टे संस्कृत कोष।

(३) नमः=अन्न।

क—यास्कनिघण्टु २।७ में 'नमः' शब्दका अर्थ 'अन्न' भी किया गया है।
अन्न यहाँ सब भोग सामग्रीका उपलक्षक या प्रतिनिधि है। इसमें अपने निर्वाहके
कपड़े, रुपया, पैसा पशु तथा मकानादि सभी आ जाते हैं।

ख—शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।१७ में भी कहा है 'अन्नं नमः' अर्थात् अन्न ही
'नमः' है।

ग—आप्टे संस्कृत कोष में 'नम' शब्दका अर्थ किया है Food भोजन।

(४) नमः=वज्र।

क—यास्कनिघण्टु २।२० में नमः शब्दका अर्थ वज्र भी किया गया है। वज्र-
का मतलब उनसब भयंकर शस्त्रास्त्रोंसे है जिनसे दुष्टोंका संहार किया जाय।

ख—नमः a thunder bolt वज्र। आप्टे संस्कृत कोष।

(५) नमः=यज्ञ।

शतपथब्राह्मण ७।४।१।३०॥२।४।२।२४॥२।६।१।४२॥६।१।१।१६॥में यज्ञोवै
'नमः' कहकर 'नमः' शब्दका अर्थ 'यज्ञ' भी किया गया है। इसी प्रकार शतपथ-
ब्राह्मणमें कहा है—

'तस्मादु ह नायज्ञियं ब्रूयान्नामस्तऽइति यथा हैनं' (अयज्ञियं) ब्रूयाद् यज्ञस्त
इति तादृक्तत् ॥ (श० ७।४।१।३)

यह वाक्य भी यही सिद्ध करता है कि 'नमः' शब्द 'यज्ञ' का भी वाचक है।

यद्यपि संस्कृत साहित्य में 'नमः' शब्दके कई अर्थ हैं, तथापि धोड़ेसे अर्थ
हमने यहाँ प्रसंगवशात् दे दिए हैं। इसप्रकार यदि हम 'नमः' शब्दके अर्थोंका
संक्षेपमें संग्रह करें, तो वह संग्रह इस प्रकार होगा—

नमः—सत्कार, श्रद्धा, किसीके सामने झुकना, नीचा होना, त्याग, अन्न
(सम्पूर्ण भोग्य सामग्री), वज्र (सम्पूर्ण घातक शस्त्रास्त्र); यज्ञ और भेंट।

पू०—यह कैसे प्रतीत हो कि इन बहुतसे अर्थोंमें से 'नमः' शब्दका कहीं क्या
अर्थ है?

सि०—थोड़ीसी भी बुद्धिका प्रयोग किया जाय तो यह उलझन भी आसानी-
से सुलझ सकती है। प्रकरण, समय तथा स्थानादिको देखकर यह बात बड़ी
आसानीसे पहिचानी जा सकती है कि 'नमः' शब्दका कहीं क्या अर्थ होना

चाहिए। संस्कृत साहित्यमें 'सैन्धव' शब्दके 'नमक' और 'घोड़ा' दोनों ही अर्थ हैं। एक आदमी रसोई घरमें भोजन करते समय अपने नौकरसे कहता है—

“सूपाय किञ्चित् सैन्धवमानीयताम्, नूनमद्य न्यूनमाभाति”

अर्थात् दालके लिए थोड़ा 'सैन्धव' ले आओ, कुछ आज कम मालूम होता है। यह सुनते ही नौकर सैन्धव अर्थात् सेन्धा नमक ले आवेगा, घोड़ा नहीं। और जब मालिकको हवाखोरी करने जाना होगा, उस समय नौकर सैन्धव—घोड़ा ही लाएगा, नमक नहीं। ठीक इसी तरह 'नमः' शब्दके प्रयोगको देखकर पहिचानो कि यहाँ 'नमः' शब्दका प्रयोग किस दृष्टिसे है। पाठक अब इस बातको समझ गये होंगे कि इनसब अर्थोंको कण्ठाग्र कर लेने पर यह कहनेवालोंकी जवान बन्द हो जाएगी कि छोटा तो बड़ोंको 'नमस्ते' करे पर बड़ा छोटोंको नमस्ते कैसे करे ?

जिस समय छोटा, पुत्र या शिष्य अपने पिता या आचार्यको 'नमस्ते' करता है उस समय उसका यही अर्थ होता है कि 'आपके लिए सत्कार हो, मैं आपके सामने झुकता हूँ, मेरे हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा है' इत्यादि। और उसके उत्तरमें पिता या आचार्य अपने बेटे या शिष्यको आशीर्वाद देते हैं कि 'नमस्ते' अर्थात् 'तेरे लिए अन्नादि समस्त भोग्य सामग्री प्राप्त हो, तू फूले-फले, समृद्धिशाली हो' इत्यादि। यही तो बड़ोंका आशीर्वाद होता है। अब चाहे परस्पर 'नमस्ते' करते हुए क्यों न हृदय में परमात्माका नाम याद करते रहो। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। इसीका नाम है भूख के समय भोजन माँगना, प्यासके समय पानी माँगना तथा सत्कारके समय सत्कार और आशीर्वादके समय आशीर्वाद देना। परमात्मा का नाम स्मरण करनेसे तुम्हें कोई नहीं रोकता।

बराबरवाले परस्पर 'नमस्ते' करके एक-दूसरेका सत्कार ही करते हैं। परन्तु इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यदि बड़ा भी छोटोंको सत्कार करनेके अभिप्रायसे 'नमस्ते' करता है तो भी कोई दोष नहीं और कोई पाप नहीं। संसारमें तो यह होता ही है कि बड़ा भी छोटेका सत्कार करता है, क्योंकि वह छोटा बड़ेके सत्कारका साधन बन सकता है। यदि तुम स्वयं सत्कार चाहते हो तो श्रीरोंका भी सत्कार करो। छोटोंका सत्कार करना उनको अपने समान बनानेका अच्छा साधन है। जितना तुम उसका सत्कार करोगे उतना ही वह तुम्हारा भी सत्कार करेगा और करायेगा।

यदि 'नमस्ते' शब्दका शास्त्रोक्त प्रयोग देखना हो तो आइए सारे वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य पर सरसरी नजर डालें, बहुत स्थानों पर 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग मिलेगा। हम स्थान-स्थान पर नमस्ते शब्दका प्रयोग दिखायेंगे, प्रकरण तथा स्थानको देखकर पाठकवृन्द स्वयं विचार लेंगे कि उपरिलिखित 'नमः' शब्दके अर्थोंमेंसे कौनसा अर्थ उपयुक्त है। 'ते' शब्दका अर्थ सब जगह 'तुम्हारे लिए' ही होगा।

यजुर्वेदका सारा १६वाँ अध्याय उठाकर पढ़ जाइए, उसमें 'नमस्ते' शब्दका बहुत प्रयोग है—

(१) नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च दुधन्याय च ॥

(यजु० १६।३२)

इस मंत्र में छोटे, बड़े, पूर्वज एवं नीच तथा मध्यम आदि सबके लिए 'नमस्ते' का प्रयोग है !

(२) नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो दिषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥

(यजु० १६।२७)

यहाँ तो तक्ष—तरखान, राजमिस्त्री, रथकार, कुलाल—कुम्हार, निषाद अर्थात् चाण्डाल तथा कुत्तों के शिक्षक, आदि सबके लिए 'नमस्ते' का प्रयोग है अर्थात् इनके लिए अन्नादि भोग्य सामग्री देनेका विधान है ।

(३) नमो वंचते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सूकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तंचरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ।

(यजु० १६।२१)

इस मन्त्रमें छली, कपटी चोरोंके सरदार, हिंसक, लुटेरे तथा गठकतरे आदि सभीके लिए 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग होता है अर्थात् उन्हें नमः वञ्चसे मारनेका विधान है ।

यजुर्वेद के १६वें अध्यायके हमने तीन ही मन्त्र केवल दिखानेमात्रके लिए लिखे हैं यह तो सारा अध्याय नमस्ते शब्दसे भरा पड़ा है ।

हमारे पौराणिक भाई कहते हैं कि यह तो रुद्राध्याय है इसमें परमात्माके प्रति 'नमस्ते' है ।

यथा—'नमस्ते रुद्र मन्यवे—' इत्यादि ।

(यजु० १६।१)

मैं अपने उन पौराणिक भाइयोंसे पूछता हूँ कि यदि वस्तुतः इस अध्यायमें सर्वत्र रुद्र अर्थात् परमात्माके ही 'नमस्ते' है, तब तो इस अध्याय में आये चोर, लुटेरे, डाकू, कुत्ते, शूद्र तथा चाण्डालादि सभी प्राणी परमात्माके ही रूप हो गये जिनको भिन्न-भिन्न अभिप्रायसे 'नमस्ते' किया गया है । तब तो भाई ? जब तुम्हारे घरमें चोर, लुटेरे, कसाई या चाण्डाल घुस आवें तब तुम उनकी अर्घ आदि देकर पूजा किया करो । वे लुटेरे आपकी भक्तिसे बड़े प्रसन्न होंगे, और आपको अपने घरमें रुपया पैसा तथा अन्य सामान आदि रखनेकी तकलीफ भी नहीं

होगी, क्योंकि वे सब उठाकर ले जायेंगे। शूद्र और चाण्डालोंको भी मन्दिरोंमें आनेसे क्यों रोकते हो? भाई! वे भी तुम्हारे कथनानुसार रुद्र परमात्माके ही तो रूप हैं।

(४) नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वचिषे.....

(यजु० १७।११)

(५) 'नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः मृत्यो मूलभ्यो ब्राह्म-
णेभ्य इदं नमः'। (अथर्व० ६।१३।३)

(६) 'नमस्ते राजन्' अथर्व० २।१०।२

(७) 'नमस्ते अग्न ओजसे' सामवेद प्र० १, अर्ध पृ० १, द० २, मं० १ ॥

इनसब स्थानोंमें 'नमस्ते' शब्दका प्रयोग है।

(८) नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः नमो युवाभ्यो नमो आसिनेभ्यः

(ऋग्० १।२७।१३)

यहाँपर क्रमशः बड़े, छोटे, जवान तथा बूढ़े सबके लिए 'नमस्ते' किया गया है 'अर्भक' शब्दका अर्थ है छोटा। यास्कमुनि निरुक्त ३।४।२० में लिखते हैं—
'दभ्रमर्भकमित्यल्पस्य' अर्थात् 'दभ्र' और 'अभ्रक' शब्द थोड़े या छोटेके अर्थमें आते हैं।

(९) शतपथ ब्राह्मणमें आता है कि गार्गी अपने पति याज्ञवल्क्यको नमस्ते करती है।

साहोवाच—नमस्ते यात्रवल्क्य।

(१०) याज्ञवल्क्य यद्यपि ऋषि थे, वे पदवीमें अपनेसे छोटे राजा जनकको नमस्ते करते हैं—

“साहोवच-जनको वैदेहो-नमस्ते” (शतपथ)

(११) महर्षि 'यम' जोकि नचिकेताके आचार्य होनेके कारण अपने शिष्यसे बड़े थे, अपने शिष्य नचिकेताको नमस्ते कहते हैं—

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु

(कठोपनिषद व० १ कं० ६)

(१२) गीता में अर्जुनने कृष्णको नमस्ते किया—

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः,

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते,

नमः पुरस्तादय पृष्ठतस्ते,

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥

गीता १।३६।४०

(१३) पौराणिक कालके भवभूति नामके महाकविलिखित ग्रन्थ उत्तरराम-चरितमें रामने सीताको नमस्ते किया है—

भगवति ! नमस्ते (उत्तररामचरित)

(१४) आइए, अब हम पुराणोंको टटोलें कि उनमें भी, कहाँ-कहाँ नमस्ते शब्दका प्रयोग है।

देव देव जगन्नाथ, नमस्ते भुवनेश्वर ।

जीवच्छादं महादेव, प्रसादेन विनिर्मितम् ॥

(लिंग पु० ३।२७।७)

हे सम्पूर्ण संसारके स्वामी महादेव ! कृपापूर्वक तुमने जीवित श्रद्धाका निर्माण किया है। इसलिए तुम्हें नमस्ते हो।

(१५) पृथ्वी वराहरूपधारी भगवान् की स्तुति करती हुई बोली—

शेषपर्यंकशयने, घृतवक्षःस्थलश्रिये ।

नमस्ते सर्वदेवेश, नमस्ते मोक्षकारिणे ॥

(वाराह पु० १।२१)

शेषनागरूपी शय्यापर छातीपर लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान्को नमस्ते हो, मोक्षदायक भगवान्को नमस्ते हो।

(१६) वराह पृथ्वीसे बोला—

क—नमोऽस्तु विष्णवे नित्यं, नमस्ते पीतवाससे ।

नमस्ते चाघरूपाय, नमस्ते जलरूपिणे ॥

(वाराह पु० ११।११)

पीतवस्त्रधारी विष्णुको नित्य नमस्ते हो, पापरूप विष्णुको नमस्ते हो, जलरूप विष्णुको नित्य नमस्ते हो ॥

ख—नमस्ते सर्वसंस्थाय, नमस्ते जलशायिने ।

नमस्ते क्षितिरूपाय, नमस्ते तैजसात्मने ॥

(वाराह पु० ११।१२)

सर्वव्यापक, जलमें सोनेवाले, पृथ्वीरूप तथा तेजःस्वरूप विष्णुको नित्य नमस्ते हो।

(१७) केतकीका फूल जड़ होता हुआ भी महादेवको नमस्ते करता है—

नमस्ते नाथ मे जन्म, निष्फलं भवदायज्ञाय ।

(शिव० पु० विद्येश्वर सं० अ० १०, श्लोक १७)

हे नाथ ! मेरा जन्म आपकी आज्ञासे निष्फल हो गया। मैं आपको नमस्ते करता हूँ। यहाँ नमस्ते शब्दमें कहीं कुछ व्यञ्ज तो नहीं !

(१८) ब्रह्मा तथा विष्णु महादेवको नमस्ते करते हैं—

नमः सकलनाथाय, नमस्ते सकलात्मने ॥२८॥

(शिव पु० विद्येश्वर सं० १, अध्याय १०)

सबके नाथ तथा सबके आत्मा शिव के लिए नमस्ते हो ।

(१६) पौराणिकोंके यहाँ स्त्री तथा शूद्र अच्छी दृष्टिसे नहीं देखे जाते । 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' इत्यादि मनगढ़न्त वाक्योंके प्रमाणसे वे स्त्री तथा शूद्रको पढ़नेका अधिकार तक नहीं देते । अतः प्रतीत ऐसा होता है कि हमारे पौराणिक भाई, स्त्री तथा शूद्रको नीच समझते हैं । परन्तु पुराणोंमें तो उन स्त्री और शूद्रोंके लिए भी नमः शब्दका प्रयोग है—

द्विजानाञ्च नमः पूर्वमन्येषाञ्च नमोऽन्तकम् ।

स्त्रीणाञ्च क्वचिदिच्छन्ति, नमोऽन्तं च यथाविधि ॥

(शिव पु० विद्येश्वर सं० १, अ० श्लो० ४२)

द्विजोंके लिए पूर्व नमः शब्दका प्रयोग करना चाहिए तथा अन्योके लिए अन्तमें नमः शब्द प्रयुक्त होता चाहिए और स्त्रियोंके लिए भी यथाविधि कहीं नमः शब्दका अन्तमें प्रयोग करते हैं (कहीं पूर्व भी) ।

परिणामतः पौराणिकोंका यह कहना कि नीचोंके लिए नमस्ते नहीं होता, ठीक नहीं ।

(२०) दक्ष अपनी पुत्री सतीको नमस्ते करता है—

वीरिणीसम्भवां दृष्ट्वा, दक्षस्तां जगदम्बिकाम् ।

नमस्कृत्य करौ वदध्वा, बहु तुष्टाव भक्तितः ॥२७॥

(शिव पु० रुद्र० सं० २ सती खं० अध्याय १४)

दक्षने अपनी स्त्री वीरिणीसे उत्पन्न जगत्की माता उस सतीको देखकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करके भक्तिसे उसकी स्तुति की ।

पौराणिक भाई अब इसका उत्तर दें कि यदि पिता अपनी पुत्रीको नमस्कार या नमस्ते करके सत्कार करे तो उसका क्या मतलब होता है ? क्या यह अपनेसे छोटेको नमस्ते करनेका प्रमाण नहीं है ?

(२१) मनुस्मृतिमें एक वाक्य आता है कि—

क्षत्रियाद् विप्रकन्यायां, सूतो भवति जातितः ।

(मनु० १०।११)

अर्थात् एक ब्राह्मणकी लड़कीमें क्षत्रियके द्वारा जो सन्तान पैदा हो उसे सूत कहते हैं । इस वाक्यके प्रमाणसे हमारे पौराणिकधर्मी भाइयोंके सिद्धान्तमें सूत एक वर्गसंकर शूद्र होता है । परन्तु पुराणके अध्ययनसे यह पता चलता है कि सूत नाम-वाले वर्गसंकर शूद्रको भी ऋषियों ने नमस्ते किया । ऋषि बोले—

सूत सूत महाभाग, व्यासशिष्य; नमोऽस्तुते ।

तदेव व्यासतो ब्रूहि, भस्ममहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥

(शिव पु० विद्येश्वर सं० १ अध्याय २३)

हे सौभाग्ययुक्त ! व्यासके शिष्य सूत ! हम आपको नमस्ते करते हैं । आप व्याससे पढ़ा हुआ भस्मका महात्म्य हमें सुनाइये ॥

क्या यहाँ बड़ेने छोटेको नमस्ते नहीं किया ? एक और भी बात यहाँ प्रसङ्ग-वशात् लिख देनी आवश्यक है और वह यह कि पुराणोंके अनुसार इन सूतजीने जोकि शूद्रसे भी पतित है, पुराणोंको गा-गाकर सुनाया है। मालूम होता है कि पुराण अवश्यमेव शूद्रके ही लिए हैं। इसीलिए भागवतमें आया है कि—

स्त्रीशूद्रद्विजनबन्धूनां, त्रयी न श्रुतिगोचरा।

कर्मश्रेयसि मूढानां, श्रेय एवं भवेदिह ॥२५॥

इति भारतमाख्यानं, कृपया मुनिना कृतम् ॥२६॥

(भागवत स्कं० १ अध्याय ४)

अर्थात् स्त्री, शूद्र तथा जो पतित द्विज हैं वे वेदाध्ययन नहीं कर सकते इस-लिए उनके लिए मुनिने महाभारत की रचना की जिससे कि वे भी अपना कर्तव्या-कर्तव्य निश्चय कर सकें।

(२२) विष्णुका दधीचिको नमस्ते—

विभेमीति सकृद् वक्तुं मर्हसि त्वं नमस्तव ॥१२॥

जगाम निकटं तस्य, प्रणनाम मुनि हरिः ॥१३॥

(शिव पु० रुद्र० सं० २ सती खं० २ अ० ३६)

विष्णुने दधीचिसे कहा, मैं एकवार कहनेमें डरता हूँ। तुम पूजाके योग्य हो। मैं तुम्हें नमस्ते करता हूँ। तब विष्णुजी उस दधीचिके समीप गये और उसको भी प्रणाम किया।

(२३) ब्रह्माने अपने पुत्रको नमस्ते किया—

ब्रह्मोवाच—

नमस्ते भगवन् रुद्र, भास्करामिततेजसे ॥४८॥

भगवन् भूतभव्येश, मम पुत्र महेश्वर।

सृष्टिहेतोस्त्वमुत्पन्नो, ममांगेऽर्जंगनाशनः ॥४९॥

(शि० पु० वायु सं० ७ खं० १ अ० १२)

ब्रह्मा बोले, सूर्यके समान महतेजस्वी भगवान् रुद्रके लिए नमस्ते हो ॥४८॥ हे भगवन् ! हे भूत, भविष्य तथा वर्तमानके अधिपति मेरे पुत्र महेश्वर ! हे काम नाशक ! तुम मेरे शरीरसे सृष्टिके निमित्त उत्पन्न हुए हो ॥४९॥

ऐसे स्थलपर हमारे पौराणिक भाई कहा करते हैं कि यहाँ वस्तुतः पिता अपने पुत्रको नमस्ते नहीं करता। यहाँ परमेश्वर स्वयं ही पुत्र रूपमें प्रकट हुए हैं, अतः नमस्ते परमेश्वर को ही है।

मेरा निवेदन यह है कि पौराणिकसम्मत वेदान्तके अनुसार तो सारा संसार ही ब्रह्मरूप है। लौकिक माता, पिता तथा पुत्रादि सभी सम्बन्धी भी ब्रह्मरूप ही हैं। अतः यदि वे परस्पर नमस्ते करें तो क्या दोष ? तबभी तो आपके कथनानुसार ब्रह्म ही ब्रह्मको नमस्ते करेगा।

(२४) शिवने अपनी स्त्री पार्वतीको नमस्ते किया—

तथा प्रणयभङ्गेन, भीतो भूतपति स्वयम् ।

पदयोः प्रणमन्तेव, भवानीं प्रत्यभाषत ॥४०॥

(शिव पु० वायु० सं० ७ खं० १ अध्याय १२)

तथा स्वयं शिव ने प्रीतिभंगसे भयभीत होकर पार्वतीके चरणोंमें नमस्ते करके उत्तर दिया ।

(२५) ब्रह्माने अपनी धर्मपत्नी सावित्रीके चरणोंमें गिरकर नमस्ते किया—

न चापराधं भूयोऽन्यं, करिष्ये तव सुव्रते !

पादयोः पतितस्तेऽहं, क्षम देवि नमोऽस्तुते ॥१५०॥

(पद्म० पु० सू० खं० अ० १७)

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रते देवि ! मैं तुम्हारे पैरोंपर गिरा हूँ । क्षमा करो । मैं फिर तुम्हारा अपराध नहीं करूँगा । तुम्हें नमस्ते हो ।

इन ऊपरके दो श्लोकोंमें तो पति अपनी स्त्रियोंके पैरोंपर गिरकर नमस्ते कर रहे हैं । यह अपनी स्त्रीके चरणोंमें गिरकर नमस्ते करना तो वेदविरुद्ध पौराणिक लीला है । परन्तु पति पत्नीका परस्पर प्रेम से सत्कारार्थ नमस्ते करना आर्यसमाजका वैदिक सिद्धान्त है ।

इस नमस्तेके लिए प्रमाण बहुत अधिक हैं । अतः लेखकी काया बढ़नेके भयसे मैं केवल प्रमाण देता चला जाऊँगा । जहाँ आवश्यक होगा वहाँ अर्थ भी कर दिया जाएगा:—

(२६) वासना वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।

सर्वभूतनिवासानां वासुदेव नमोऽस्तुते ॥३४॥

(विष्णु सहस्रनाम)

वासुदेव को नमस्ते किया गया है ।

(२७) नमस्ते भगवन् रुद्र (देवायर) पानां पतये नमः ।

सर्वोपासित रूपाय सुरासुर पतये नमः ॥

(पार्थिव पूजन)

यहाँ सुरासुर पति रुद्रको नमस्ते किया गया है ।

(२८) गोविन्द नमो नमस्ते

(पाण्डव गीता)

हे गोविन्द ! तुम्हें नमस्ते हो ।

(२९) क—या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

ख—नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे,

नमस्ते जगद्व्यापिके चित्स्वरूपे ।

नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते,

जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे नमस्ते ॥

(देवी भागवत)

इन उपरिलिखित श्लोकोंमें जगद्रक्षिका दुर्गाको नमस्ते किया गया है।

(३०) नमस्ते भगवन् भूयो, देहिमें मोक्ष शाश्वतम् । (सारस्वत सूत्र २५८)
हे भगवन् ! तुम्हें बार-बार नमस्ते हो । तुम मुझे मुक्ति दो ।

(३१) 'नमस्तेवाङ् मनोतीतरूपाय' (सत्यनारायण)
वाणी तथा मन के अगोचर प्रभु को नमस्ते हो ।

(३२) इसी प्रकार दुर्गापाठके पञ्चम अध्यायके श्लोक १६ से लेकर श्लोक ७६ तक अनेक स्थलोंपर नमस्ते शब्द आया है ।

(३३) जगदादिरनादिस्त्वं, नमस्ते स्वात्मवेदिने ।

(शिव पु० उत्तर खं० अध्याय १४ श्लो० २८)

हे प्रभो ! तुम जगत्के आदि कारण और स्वयं अनादि हो, तुम्हें नमस्ते हो ।

(३४) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने उत्तम ब्राह्मणोंको नमस्ते किया है—

विप्रान् स्वालाभसन्तुष्टान्,

साधून् भूतसुहृत्तमान् ।

निरहंकारिणीः शान्तान्;

नमस्ते शिरसाऽऽसकृद् ॥

ऐसे विप्रोंको बार-बार नमस्ते हो, जब सब मित्र अहंकारशून्य शान्ति तथा लाभ न होनेपर भी सन्तोष करनेवाले हैं ।

(३५) बृहदारण्यकोपनिषद् में आया है कि राजा जनकने अपने आसनसे उठकर मुनि याज्ञवल्क्यको नमस्ते किया—

जनको हं वैदेहः कूर्चादुपापसर्पन्नुवाच नमस्ते ।

(३६) वाल्मीकिरामायण बालकांड सर्ग ५० श्लोक १७ में विश्वामित्रने 'नमस्तेस्तु' आपको मेरा नमस्ते हो, ऐसा कहकर वसिष्ठ से बिदा ली थी ।

(३७) सीता जङ्गलमें विराध नामके राक्षसको नमस्ते करती है—

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति, शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।

मा हरोत्सृज काकुत्स्थ, नमस्ते राक्षसोत्तम् ॥

(बाल्मीकि रामायण सर्ग ४ श्लोक ३)

(३८) अथर्ववेदमें स्त्री जातिके लिए नमस्तेका प्रयोग है—

नमस्ते जायमानायै, जाताया उत ते नमः । (अथर्ववेद १०।१०।१)

नमस्ते शब्द का व्यवहार अथर्ववेद तथा अन्य वेदोंके अन्दर बहुत अधिक है । विज्ञ पाठक स्वयं भी देख सकते हैं ।

इस प्रकार हमने नमस्ते शब्दका व्यवहार संक्षेप रूपसे वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, गीता, रामायण तथा पुराणादि सभी ग्रन्थोंमें दिखा दिया है । मैं समझता हूँ कि इतने विवेचनसे हमारे पण्डितमन्य पौराणिक भाइयोंकी आँखें अवश्य खुल गयी होंगी ।

पू०—नमस्ते इस शब्दमें दो विभाग हैं—नमः—ते । वास्तव में यहाँ था—नमः—तुभ्यम् । परन्तु यह याद रखना चाहिए कि तुभ्यम् के स्थानपर ते आदेश

पद्य (श्लोकादि) में ही होता है, गद्य अर्थात् सीधी बोलचालकी भाषामें नहीं होता । अतः व्याकरण की दृष्टिसे आर्यसमाजियोंका बोलचालकी भाषामें नमस्ते शब्दका प्रयोग अशुद्ध है । तभी तो भट्टोजीदीक्षितने सिद्धान्तकौमुदीमें तुभ्यम् के स्थानपर ते आदेश होनेका जो प्रमाण दिया है, वह श्लोकमें दिखाकर दिया है । यथा—

श्रीस्त्वावतु मापीह, दत्तात् मेपि शर्म सः ।

स्वामी ते मे पि स हरिः पातु वामपि नौ हरिः ॥१॥

सि०—पौराणिक भाईकी यह शंका व्यर्थ है । यदि वह सिद्धान्तकौमुदीका ठीक तरह से मनन करे तो उसे ऐसी बात कहनेकी हिम्मत ही न पड़े । आगे चलकर कौमुदीकारने एक वार्तिक लिखा है—

‘सामनवाक्ये निघात युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या’—

इस वार्तिकके अनुसार एक ही वाक्यमें, (भिन्न वाक्यमें नहीं) हम तुभ्यम् के स्थानपर ते आदेश कर सकते हैं । इसमें यह आग्रहहठ नहीं है कि वह किसी पद्यमें ही आया हो । इसीलिए भट्टोजीदीक्षितने आगे जो ते आदेश होनेका दृष्टान्त दिया है वह पद्यका नहीं है अपितु गद्य अर्थात् सीधी बोलचालकी भाषाका है । यथा—

‘शालीनां ते आदन दास्यामि’

यहाँ यह गद्य-वाक्य है । अगले—

“एतेवां नावादया आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्या”

इस वार्तिकको पढ़नेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, कि जब हम देखते हैं कि इस वार्तिकका प्रत्युदाहरण भट्टोजीदीक्षितने गद्यमें ही दिया है—

‘तस्मै ते नमः’ ।

परिणामतः हम यह दावेसे कह सकते हैं कि नमस्ते शब्द ठीक है, प्रमाणिक है तथा इसीका बोलचालकी भाषामें प्रयोग होना चाहिए ।

पू०—नमस्ते शब्दको दो टुकड़ोंमें बाँटा जाता है, नमः, ते । ते शब्द तुभ्यम् के स्थानपर आदेश होता है । परन्तु विचारणीय बात यहाँपर यह है कि तुभ्यम् शब्द युष्मद् शब्दकी चतुर्थी विभक्तिके एक वचनका रूप है । इसका अर्थ है तेरे लिए । ऐसी अवस्थामें यह कैसा असभ्य व्यवहार होगा कि पुत्र अपने पिताको यह कहे कि तेरे लिए नमः हो ? आदरके लिए उसको कहना तो यह चाहिए था कि आपके लिए नमः हो । अतः समझमें यही आता है कि आर्यसमाजमें नमस्ते शब्दका व्यवहार अनुपयुक्त है ।

सि०—यह कोई आवश्यक नहीं कि ते एक वचनका रूप प्रयोग करने से बड़ोंका अनादर होता है । यह तो केवल प्रत्येक भाषाका अपना-अपना तरीका होता है । अंग्रेजीमें ही इस एक वचनके रूपका अर्थ है वह । परन्तु इसका प्रयोग छोटे-बड़े सबके लिए समान रूपसे होता है । यदि कोई छोटा पुरुष बड़ेके लिए ही इस

एकवचनान्त शब्दका व्यवहार करता है, तो इसमें बड़ा व्यक्ति अपना अपमान नहीं समझता, क्योंकि यह उसकी भाषाके व्यवहारका तरीका है। परन्तु हाँ, यदि हम नमस्ते शब्दमें ते शब्दका हिन्दी अनुवाद करके किसी महापुरुषसे कहें कि तेरे लिए नमः तो यह एक अपमानसूचक प्रयोग होगा, क्योंकि इस हिन्दीके व्यवहार का यही भाव समझा जाता है। थोड़ी देरके लिए यदि हम मान भी लें कि ते शब्द अपमानसूचक है, तो पौराणिक भाइयोंसे पूछा जा सकता है कि पूर्व दिये हुए पुराणोंके उदाहरणमें परमात्माके लिए, अपने-अपने पिताके लिए, गुरुओंके लिए, ऋषियोंके लिए तथा अपने अन्य पूज्योंके लिए, एक वचनके ते शब्दका प्रयोग क्यों किया गया है? क्या वहाँ अपमानसूचित नहीं होता? द्विवचनका प्रयोग तो एकके लिए हो ही नहीं सकता। शेष रह गया बहुवचनका प्रयोग। अब यदि ते के स्थानपर बहुवचनका वह शब्द प्रयुक्त कर देते तो हमारे पौराणिक भाई यह प्रश्न कर बैठें, कि छोटे-छोटे नमः करते समय बहुवचनान्त शब्दके प्रयोगकी क्या आवश्यकता? बहुत हदतक यह उनका प्रश्न ठीक भी होता। इन आपत्तियोंसे वचनेके लिए वैदिक साहित्यज्ञोंने ते एकवचनान्त शब्दका सबके लिए प्रयोग करना उचित समझा और यह युक्तियुक्त भी है।

हमारे पौराणिक धर्मियोंके तो पुराण उनके विश्वासके अनुसार वेद हैं। जैसाकि भागवतमें आया है—

क—ऋग्यजुःसामार्थवाख्या, वेदश्चत्वार उद्वृताः ।

इतिहासपुराणं च, पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

(भागवत स्क० १ अ० ४)

ख—इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।

सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥३९॥

(भागवत स्क० ३ अ० १२)

इन दोनों श्लोकोंके अनुसार पुराणोंको पाँचवाँ वेद माना गया है। इन पौराणिकोंके वेदमेंसे भी हमने अच्छी तरह दिखा दिया है कि छोटे-बड़े सबके लिए 'नमस्ते' उपयुक्त है। सच्चे वेदों (ऋग्, यजु, साम और अथर्व) मेंसे भी 'नमस्ते' की प्रमाणिकता को सिद्ध कर दिया गया है। अतः, हे आर्य भाइयो! आओ, हम एक-दूसरेमें अनेकता तथा विद्वेष फैलानेवाले 'सीताराम' तथा 'राघे-श्याम, आदि असम्बद्ध शब्दोंका परित्याग करके परस्परके सत्कार एवं आशीर्वादके लिए वैदिक 'नमस्ते' को ही अपनावें और परस्पर नमस्ते करके एकताके सूत्र में बँध जावें। आप भी परस्पर नमस्ते कीजिये और मैं भी आपसे सादर नमस्ते करके बिदा होता हूँ।

श्रीकृष्ण चरित

डा० भवानीलाल भारतीय, एम० ए०, पी-एच० डी०

धर्म-संस्कारक, स्वराज्य-स्रष्टा, निःस्पृह, परिव्राट्, विचक्षण राजनीतिज्ञ आदि गुणों से सम्पन्न महामानव योगिराज श्रीकृष्ण का आगमन इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के उन्नायक तथा स्रष्टा रहे हैं। उनको ठीक से समझना और अपनी परम्परा का ज्ञान प्राप्त करना आज के संक्रान्ति युग में अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

श्रीकृष्ण के जीवन पर आलोचनात्मक पद्धति से महाभारत पर आधारित अनु-सन्धानपूर्वक प्रकाश डालने वाली ऐसी अन्य पुस्तक अभी तक आपने नहीं देखी होगी।

हर राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक, विचारक, शिक्षक तथा मननशील पाठक के लिए आवश्यक पुस्तक।

डिमाई आकार के २४० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २५.०० मात्र

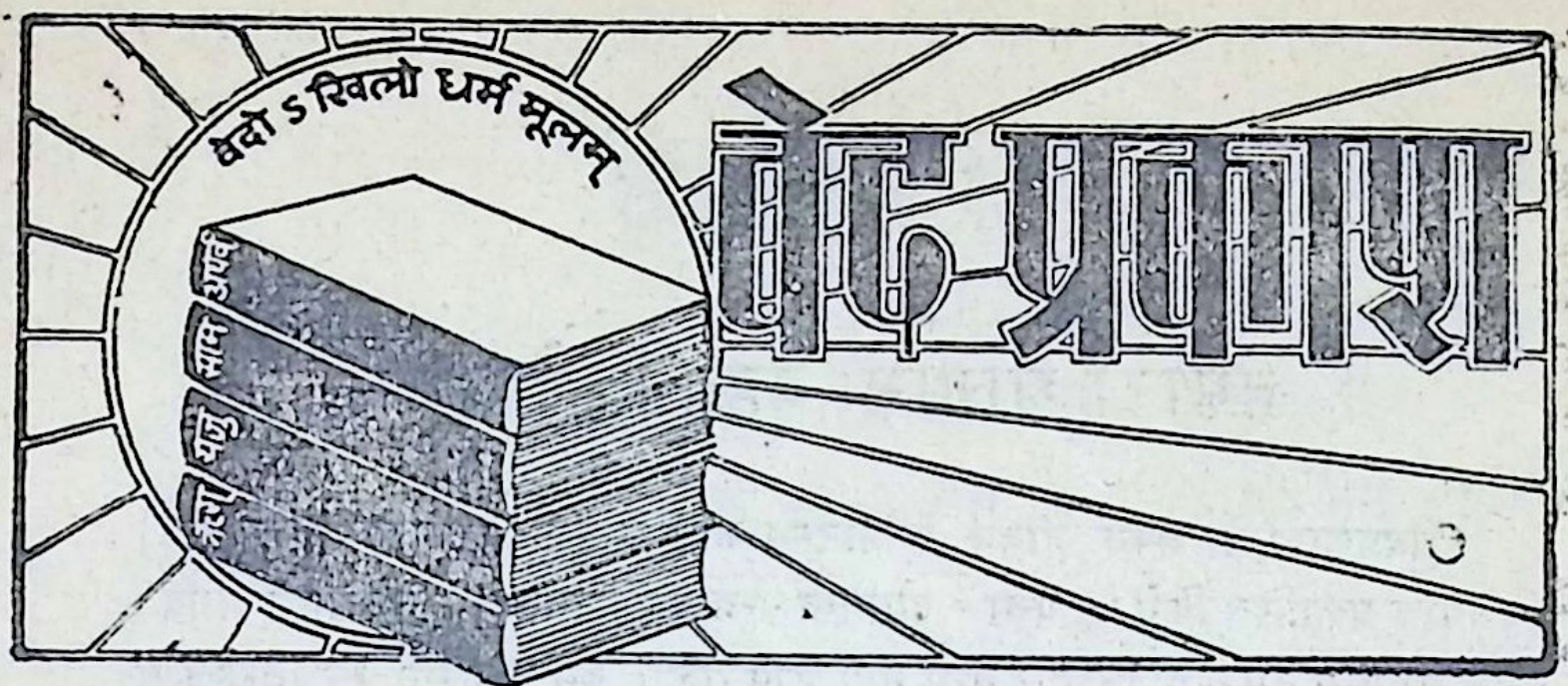
श्रीमद्भगवद्गीता	श्री सत्यपाल विद्यालंकार	८.००
षड्दर्शनम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	५०.००
वाल्मीकि रामायण	" "	८०.००
प्रार्थना लोक	" "	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	" "	३.००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	" "	३.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	" "	५.००
वैदिक वन्दन	पं० सत्यकाम विद्यालंकार	७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	५०.००
वैदिक संस्कृति का सन्देश	" "	३५.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	" "	१५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
संस्कार समुच्चय	" "	४५.००
वेदों के अनुपम विचार	प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)	६.५०
ईश्वर प्रत्यक्ष	पं० मदनमोहन विद्यासागर	६.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	१५.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द, राज संस्करण) १०१.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा
वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



वेद-मन्त्र

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्व स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥

—ऋग्वेद १।४४।६

१. हे प्रभो ! आप गृणते=स्तुति करनेवाले के लिए सुशंसः=उत्तम शंसन व उपदेश करनेवाले बोधि=जाने जाते हो । उस स्तोता के लिए आप उत्तम ज्ञान देते हैं ।
२. यविष्ठ्य=गुणों को प्राप्त कराने तथा अवगुणों को दूर करने में सर्वोत्तम प्रभो ! आप अपने स्तोता के लिए मधुजिह्वः=माधुर्यमय जिह्वावाले अर्थात् अत्यन्त मधुर शब्दोंवाले स्वाहुतः=(सु आहुतः) उत्तमोत्तम हव्य पदार्थों को देनेवाले हो । ३. आप प्रस्कण्वस्य पुरुष की आयुः=आयु को प्रतिरन्=वढ़ाते हुए जीवसे=उत्तम जीवन के लिए दैव्य लोगों को अर्थात् प्रभुप्रवण पुरुषों को नमस्या=(परिचरणकर्मा नमस्यति) । आपकी कृपा से यह अध्यात्मवृत्तिवाले लोगों के सम्पर्क में आए और शुश्रूषा (परिचरण) करता हुआ उनके उपदेशों से जीवन-निर्माण की प्रेरणा वन को उन्नत बनाए । उत्तम जीवन यही है कि मनुष्य (क) प्रभु के उत्तम सुने, (ख) माधुर्यमयी जिह्वावाला हो, (ग) उत्तम सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन ।
४) दैव्य लोगों के सम्पर्क में आकर जीवन को उत्तम बनाते हुए दीर्घ जीवनवाला हो ।
भावार्थ—उत्तम जीवन का परिचय प्रस्तुत मन्त्र में 'सुशंसः, मधुजिह्वः, स्वाहुतः' में दिया गया है । इस जीवन के निर्माण के लिए यत्नशील होना चाहिए तथा प्राप्त करना चाहिए ।
—पं० हरिशरण के ऋग्वेद-भाष्य से

वक्तव्य—किन्हीं अपरिहार्य कारणों से हम मई मास का अंक पाठकों को नहीं भेज सके । इसका हमें हार्दिक खेद है । पाठक हमारी विवशता के लिए क्षमा करेंगे ।

—अजय

हमारा आगामी बृहद् विशेषांक

‘वेदप्रकाश’ ने अपने जीवन के आरम्भ-काल में कुछ बृहदाकार (बड़े-बड़े) विशेषांक प्रकाशित किये थे, यथा— दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, वाल्मीकि रामायण आदि। लम्बे समय से हम कोई विशाल ग्रन्थ नहीं छाप सके। इस बार सन् १९९३-९४ में हमने श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित ‘दयानन्द जीवन चरित’ छापने का संकल्प किया है। श्री देवेन्द्रनाथ जी द्वारा लिखित वह अनूठा जीवन-चरित है। उन्होंने १५ वर्ष तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके जहाँ-जहाँ ऋषि गये थे, वहाँ-वहाँ जाकर, जिन-जिन लोगों से ऋषि मिले थे, उन-उनसे मिलकर उनके जीवन की सामग्री एवं घटनाओं का संकलन किया था। इस प्रकार यह प्रामाणिक और खोज-पूर्ण संस्करण है। यह कल्याण (२० × ३०/८) साइज के लगभग ६५० पृष्ठों का ग्रन्थ होगा। कम्प्यूटर से कम्पोज होकर भव्य आकार-प्रकार में छपेगा। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द और उत्तम कागज होगा। इस प्रकार यह एक संग्रहणीय अंक होगा। यह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। पुस्तक-रूप में इसका मूल्य होगा २५०.०० रुपये, परन्तु वेदप्रकाश के ग्राहकों को यह ग्रन्थरत्न केवल १५०.०० रुपये में मिलेगा। इसका डाक-व्यय भी हम वहन करेंगे। एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा।

इस बृहद् विशेषांक के अतिरिक्त दो लघु विशेषांक भी होंगे—

१. शास्त्रार्थों के रोचक संस्मरण अंक। शास्त्रार्थों में जो हास्यरसपूर्ण रो-संवाद, वार्तालाप और प्रश्नोत्तर हुए हैं, उनका समावेश इस अंक में होगा।

२. वेदांक—चुने हुए ७ मन्त्रों की लम्बी व्याख्या।

ये दोनों अंक ३२-३२ पृष्ठों के होंगे। दोनों के लेखक स्वामी जगदीश जी सरस्वती होंगे।

बृहद् विशेषांक फरवरी १९९४ में ऋषि के जन्म और बोध अव-प्रकाशित होगा। वेदांक नवंबर ९३ में और शास्त्रार्थों का संस्मरणांक अप्रैल ९४ में प्रकाशित होगा।

अपना शुल्क १५०.०० शीघ्र भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित कर लें। स्व-ग्राहक बनें, अन्यो को बनायें। विशेषांक सीमित संख्या में ही छपेगा। अपना श-शीघ्र भेजें, बाद में पछताना न पड़े।

—अजय कुमार

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४२, अंक १०] वार्षिक मूल्य : बीस रुपये [मई-जून १९६३

सम्पा० : अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त

(दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या एवं सदाचार सहित)

—कृष्णगोपाल गुप्ता

भिरुगाचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव सुख की कामना करता आया है; परन्तु सच्चा सुख क्या है, यह वह स्वयं नहीं जानता। शास्त्रकारों ने सुख के दस प्रकार बताए हैं—

१. आरोग्य, २. दीर्घायु, ३. आदयता, ४. काम, ५. भोग, ६. सन्तोष, ७. अस्ति, ८. शुभयोग, ९. निष्क्रमण, १०. अनाबाध।

आरोग्य

शरीर की स्वस्थ दशा को आरोग्य कहते हैं। यह वह अवस्था है जिसमें शरीर किसी रोग का आक्रमण नहीं हो सकता। यदि आक्रमण हो ही जाए तो उसके तार की क्षमता होती है।

दीर्घायु

अर्थात् पूर्ण आयु। मानव की आयु १०० वर्ष मानी गई है। वेदों में लिखा है 'तेवेम शरदः शतम्।'।

आदयता

धन की प्रचुरता। इस संसार में धन ही भौतिक सुखों का साधन है। धनहीन मनुष्य चिन्ताओं व विपदाओं से घिरा होता है।

काम

काम के दो अर्थ हैं—कामनाओं अर्थात् इच्छाओं की पूर्ति और मैथुन। इच्छाओं की पूर्ति होने पर और मैथुन से जो मानसिक शान्ति और शारीरिक आनन्द प्राप्त होते हैं, उन्हें भी सुख कहा गया है।

भोग

इन्द्रियों के विषयों का सेवन। आँखें सुन्दर रूप देखना चाहती हैं। कान मधुर शब्द सुनना चाहते हैं। नाक सुगन्ध चाहती है। जिह्वा स्वादिष्ट भोजन चाहती है। त्वचा कोमल वस्त्र व शैया चाहती है। इनके मिलने से भी सुख प्राप्त होता है।

सन्तोष

सन्तोष का अर्थ है अल्प इच्छाएँ, अर्थात् जो मिल जाए उसी पर निर्भर रहना और किसी से कोई शिकायत या कामना न करना। कहा भी है 'सन्तोषो ब्रह्मा सुखी'। मनुस्मृति में लिखा है, 'सन्तोषमूलं हि सुखम्'।

अस्ति

जब किसी पदार्थ की आवश्यकता हो तभी उसकी पूर्ति हो जाना। आवश्यकता पड़ने पर कोई पदार्थ न मिलने पर भी दुःख होता है।

शुभयोग

जन-धन के सब कार्य आसानी से हो जाना। जब कोई काम बिना किसी विघ्न-बाधा के हो जाता है तब उसे शुभयोग कहा जाता है।

निष्क्रमण

प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास। गीता में 'काम्य कर्मों' के त्याग को संन्यास कहा है। जब मनुष्य की कोई इच्छा ही नहीं रहती तब उसे अनिर्वचनीय सुख प्राप्त है।

अनाबाध

जन्म-मरण की बाधाओं से मुक्ति। इसी को मोक्ष, निर्वाण अथवा कैवल्य कहा जाता है। इसे आत्यन्तिक सुख माना गया है। यही सच्चा सुख और आनन्द जिसे आत्मा दीर्घकाल तक भोगता है।

उपर्युक्त सभी सुखों में प्रथम सुख आरोग्य बताया गया है। आरोग्य किसका ? उत्तर स्पष्ट है—शरीर का; क्योंकि यम, नियम, आचार-विचार, साधना, श्रम सब

इसी शरीर के द्वारा किये जाते हैं। इसी शरीर से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार भेदों में विभक्त पुरुषार्थ सम्पन्न होते हैं। आयुर्वेद-शास्त्रों में कहा भी है कि 'धर्मार्थ-काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' अर्थात् स्वस्थ, आरोग्ययुक्त शरीर से पुरुष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति कर सकता है।

आयुर्वेद-शास्त्र के निर्माता प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस तथ्य को अपने गहन चिन्तन, तपस्या एवं निष्ठा के द्वारा हजारों वर्ष पूर्व ही समझ लिया था। न केवल समझ लिया था बल्कि जन-साधारण को समझाने हेतु तत्कालीन प्रचलित देवलपि में लिपिबद्ध भी किया। उन्होंने स्वस्थ मनुष्य की परिभाषा निम्न प्रकार से की है—

“समदोषः समान्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥”

अर्थात् जिस व्यक्ति के दोष (वात, पित्त, कफ), अग्नि (पाचकाग्नि, धात्वाग्नि आदि), धातु (रस, रक्तादि) अपनी आवश्यक मात्रा में एवं निश्चित परिमाण में हों (सम हों), मलमूत्रादि क्रियाएँ नियमित हों, आत्मा व मन प्रसन्न हों तथा इन्द्रिय अपने विषय का सुकर्म कर रही हों, वह व्यक्ति स्वस्थ है।

इतने स्वस्थ व्यक्ति की कल्पना आयुर्वेद ही कर सकता है, क्योंकि आयुर्वेद आयु का वेद है। शरीर, इन्द्रिय (कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय), मन और आत्मा के संयोग को आयु कहा है। जो आयु के सम्बन्ध में विचार कर सके, जो आयु के लिए है और जिससे आयु का लाभ है, उसे ही आयुर्वेद कहते हैं। यथा—

“हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥”

—च० सू० स्था० १।४१

अर्थात् हित आयु, अहित आयु, सुख, दुःख, तथा आयु के लिए जो हितकर (ग-कर्म) अथवा अहितकर (अपथ्य) आयु का मान, अवधि और उसके लक्षण व में हैं, उसे आयुर्वेद कहा जाता है।

योग वैदिक साहित्य में मानव की आयु १०० वर्ष मानी गई है। इसी को ही है। इसकी प्राप्ति के लिए प्रतिदिन 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' के भगवान् सूर्य का सेवन किया जाता है और प्रभु से प्रार्थना की जाती है 'शरदः शतम्'।

युग में आदिकाल से ही मानव की तीन ऐषणाएँ = इच्छाएँ रही हैं, पित्त के लिए मानव क्या-क्या नहीं करता !

आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार भी इस लोक तथा परलोक में अपने हित (भलाई) छा रखनेवाले मन, बुद्धि, पौरुष (शारीरिक बल), पराक्रम (मानसिक बल) सम्पन्न पुरुष को तीन इच्छाओं की पूर्ति का प्रयत्न करना चाहिए—

१. प्राणैषणा, २. धनैषणा, ३. परलोकैषणा।

प्राणैषणा—यह ऐषणा (इच्छा) स्वभाव से ही सर्वोपरि होती है, क्योंकि यदि प्राण ही नहीं तो बाकी ऐषणाओं का क्या होगा। प्राणों की रक्षा स्वस्थ पुरुष को स्वास्थ्य-वृत्त के पालन के द्वारा करनी चाहिए।

धनैषणा—प्राणैषणा के बाद दूसरा क्रम धनैषणा का ही आता है, क्योंकि प्राणों के बाद धन-प्राप्ति का प्रयास ही किया जाता है। जीवनोपयोगी साधनों का संकलन करने हेतु धन की आवश्यकता होती है। परिवार का पालन करना, अतिथि-सत्कार करना, दान करना, इन सबमें धन की आवश्यकता होती है, परन्तु यह धन मेहनत तथा ईमानदारी से कमाना चाहिए। ऐसा धन ही सुकर्म-फलदायक होता है।

परलोकैषणा—आयुर्वेदशास्त्र पूर्णतया दार्शनिक शास्त्र से जुड़ा हुआ है, इसलिए शाश्वत है। कुछ लोग यह सन्देह करते हैं कि शरीर छूटने के बाद हम होंगे या नहीं? अथवा कैसे होंगे? यह सन्देह किस कारण से है? महर्षि चरक कहते हैं क्या जो दिखाई दे वही सत्य है? बाकी सब असत्य है? यदि ऐसा ही है तो अपनी आँखों में लगाया गया काजल स्वयं को दिखाई नहीं पड़ता है। समान वस्तु एक-दूसरे में मिलने पर दिखाई नहीं पड़ती है, जैसे गाय का और भैंस का दूध। तो क्या यह सब असत्य है? योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

इस आत्मा को शस्त्र आदि काट नहीं सकते, आग इसे जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता तथा वायु इसे सुखा नहीं सकती। यह अजर है, अमर है। जब तक यह मोक्ष प्राप्त नहीं करती तब तक भोग-योनियों में विचरती रहती है। यही पुनर्जन्म का कारण बनती है।

इन इच्छाओं की प्राप्ति हेतु पहली आवश्यकता स्वस्थ शरीर की है, सभी कार्य स्वस्थ शरीर से ही सम्भव हैं।

स्वस्थ शरीर के लिए यूँ तो आयुर्वेद में बहुत-कुछ लिखा है। आयुर्वेद रहने के लिए कुछ नियम बनाए हैं, क्योंकि अनियमित जीवन स्वस्थ रहने के लिए बहुत-कुछ मुश्किलें पैदा करता है। जिस तरह मकान को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए खंभों (स्तम्भ) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीररूपी भवन के लिए भी आयुर्वेद में आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीन स्तम्भ बताये हैं। जिस प्रकार खम्भों के बिना मकान टूट जाता है, उसी प्रकार से आहार, निद्रा व ब्रह्मचर्य का सही व सम्यक् व्यवहार करने से शरीर गिर जाता है तथा व्याधियों से आक्रान्त होकर अस्वस्थ हो जाता है। संक्षेप में तीन स्तम्भ निम्न प्रकार से हैं—

आहार—छह प्रकार का होता है। भक्ष्य—खाने योग्य, निगलने योग्य जैसे दाल-भात आदि; चर्व्य (चबाने योग्य) जैसे भुने चने आदि; लेह (चाटने योग्य)

जैसे चटनी, शहद आदि; चोष्य (चूसने योग्य) जैसे ईख, आम आदि; एवं पेय (पीने वाले) जैसे दूध, शर्बत आदि। आहार सम्यक् होना चाहिए अर्थात् भोक्ता (भोजन करनेवाले) द्वारा किया गया प्रकृति का उपघात न करके सही समय में पच जाए उतना ही भोजन उसके लिए आहार की मात्रा अथवा प्रमाण है। अधिक भोजन करने से तन्द्रा, आलस्य, अपचआदि रोग होते हैं। वहीं कम मात्रा में भोजन करने से शरीर में कमजोरी आती है, अतः ऋतु अनुसार, बलाबल के अनुसार, मानव को पूर्व किये गये भोजन के पच जाने पर पुनः भोजन करना चाहिए।

निद्रा—भोजन की तरह ही स्वस्थ रहने के लिए निद्रा की आवश्यकता है। स्वस्थ पुरुष को कम-से-कम छह घण्टे की प्रगाढ़ निद्रा की आवश्यकता है, क्योंकि दिनभर की थकान के बाद यह आवश्यक है कि शरीर को विश्राम मिले। नींद न आने से आलस्य बना रहता है। मानसिक चिन्ता व हृदय-रोग बढ़ते हैं। प्रकृति ने निद्रा का नियम बनाया है। रात्रि का प्रथम प्रहर बीतते ही सभी चराचर जगत् के प्राणियों को निद्रादेवी अपनी गोद में समा लेती है, जिससे प्राणी के दिनभर कार्य करने के कारण आई थकान दूर होकर प्राणी अगले दिन के कार्य करने हेतु तैयार रहता है।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का तात्पर्य मैथुन का सर्वथा परित्याग नहीं है, वीर्य के आवेग का रोकना नहीं है, बल्कि ऋतुकाल के पश्चात् स्वपत्नी से गर्भाधान करना एवं गर्भाधान हेतु ही सम्भोग करना ब्रह्मचर्य है। आज के युग में 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' अर्थात् केवल स्वपत्नी के साथ सम्भोग करनेवाले को भी ब्रह्मचारी ही कहा जाएगा। दूसरी स्त्री को माता या बहन के समान समझनेवाला व्यक्ति भी ब्रह्मचारी ही कहलाता है। अधिक मैथुन करने से वीर्य का क्षय होता है और अनेक पैदा हो जाते हैं।

पर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि स्वस्थ शरीर की उपयोगिता क्या है तथा यह किस प्रकार रक्खा जाए। आयुर्वेद-शास्त्र में शरीर को स्वस्थ रखने का नियम बताए हैं जिन्हें दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या नाम से जाना इसके साथ ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए सद्बृत्त (सदाचार) पालन बताया है। दिनचर्या से तात्पर्य दिन को किस प्रकार व्यतीत करना है, रात्रि प्रकार व्यतीत करना है तथा किस प्रकार से ऋतुओं का पालन करना है। पूर्वोक्त के मतानुसार दिनचर्या निम्न प्रकार की होनी चाहिए—

१. रात्रि के अन्तिम प्रहर में अथवा सूर्योदय से कम-से-कम दो घंटे पूर्व विस्तार आग करें।

२. उठते ही उपःपान अर्थात् ताजा जल का भरपेट सेवन करें। इससे कब्ज

नहीं होती।

३. नेत्रों को शीतल जल के छीटे दे-देकर खूब धोएँ।

४. तत्पश्चात् प्रातःकालीन दैनिक शौचादि से निवृत्त होवें।

५. शौचादि से निवृत्त होकर दन्तधावन करें। दातुन नीम, बबूल, मौलश्री आदि की अच्छी, पतली, नीरोग टहनी की बनावें तथा अच्छी तरह से चवा-चवाकर कूची बनावें। उस दातुन से दाँत साफ करें व तत्पश्चात् दातुन को बीच में से चीरकर उससे रगड़-रगड़कर जीभ साफ करें, तथा गले में जमे कफ को बाहर निकालें। फिर कम-से-कम दो मील तक प्रातःकालीन भ्रमण करें।

६. तत्पश्चात् सूर्य की किरणों में बैठकर या ऋतु-अनुसार भीतर कमरे में बैठ कर हल्का व्यायाम व तेल-मालिश करनी चाहिए। तेल-मालिश करने से श्रम अथवा शक्ति से किये गये कार्य करने पर भी कोई विकृति नहीं आती। रोम-छिद्र खुल जाते हैं। पादतल पर मालिश करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। मालिश करते समय नाभि में तथा कानों में तेल की दो-दो बूँद डालनी चाहिए इससे पाचन-क्रिया सुधरती है व कर्ण-रोग नहीं होते हैं।

७. मालिश के बाद शरीर पर उबटन लगाना चाहिए। उबटन से शरीर की दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा, खुजली, मैल आदि दूर होते हैं। दैनिक कार्यों के प्रति रुचि बढ़ती है तथा पसीने से उत्पन्न विकृति अथवा दुर्गन्ध दूर होती है। उबटन जौ अथवा चने के आटे, तेल, दही अथवा चन्दन आदि को मिलाकर बनाया जा सकता है।

उबटन के पश्चात् ऋतु-अनुसार शीतल अथवा समशीतोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर एवं अन्तरात्मा प्रसन्न व पवित्र होती है। यह वीर्य-वर्धक है तथा आयु को बढ़ाता है। स्नान से श्रम, पसीना एवं शारीरिक मैल का नाश होता है।

८. स्नान के पश्चात् मोटे रूयेदार तैलिया से अच्छी तरह रगड़-शरीर का परिमार्जन करना चाहिए, इससे रोम-कूप खुल जाते हैं।

९. तत्पश्चात् ऋतु के अनुसार शीतल अथवा उष्ण वस्त्र धारण चाहिए। वस्त्र शरीर की रक्षा करते हैं, शरीर को आतप व शीत से बचाते हैं।

१०. इसके बाद परमपिता परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। को शान्ति व बल मिलता है। ईश्वर के भय के कारण मानव सत्कर्म में लग जाता है, ध्यान उसका असत्कर्म की ओर नहीं जाता, जिसके कारण मन पर बल रहता। मन को शान्ति मिलती है, आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है।

११. ईश-आराधना के बाद ऋतु के अनुसार हल्का सुपाच्य अल्पाहार खाएँ, जिसमें ऋतु-अनुसार फल, मधु व अन्य पदार्थ हों।

१२. इसके बाद अपने दैनिक जीविकोपार्जन हेतु दैनिक कार्य ईश्वर को समर्पित करके करने चाहिए। जीविकोपार्जन हेतु जो भी कार्य हों उनमें अपना लाभ

न्याय-संगत होना चाहिए। अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण निष्ठा, आस्था व सामाजिक तथा राजकीय नियमों की पालना करते हुए कार्य करना चाहिए।

१३. दिन के दूसरे प्रहर की समाप्ति पर मध्याह्न में काम के बाद थकान होने पर, भूख लगने पर, देवबलि निकालकर अपने माता-पिता, अतिथि व गुरु तथा भृत्य आदि के भोजन करने के पश्चात् भोजन करना चाहिए। मध्याह्न का भोजन ऋतु के अनुसार करना चाहिए। भोजन करते समय यह साधारणतया अनुमान होना चाहिए कि पेट के चार भाग होने का अनुमान करें जिसमें दो भाग भोजन, एक भाग जल हेतु तथा एक भाग वायु हेतु रिक्त रखें।

१४. भोजन के बाद दाँत साफ करें और स्वच्छ जल से खूब कुल्ला करें।

१५. इसके बाद भोजन को पचने में सहायता करने हेतु तथा मुख की शुद्धि हेतु इलायची, मुलैठी, शीतल मिर्च, सोंफ आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इन्हें चबा-चबाकर खाना चाहिए जिससे लालास्राव अधिक बने। लालास्राव भोजन को पचाने में सहायक होता है। भोजन शीघ्र पचता है तथा आमाशय में वायु, अम्लपित्त जैसी व्याधियाँ नहीं होतीं।

१६. मध्याह्न के पश्चात् दिन के अन्तिम प्रहर (सूर्यास्त) तक पुनः अपना दैनिक जीविकोपार्जन हेतु कार्य करना चाहिए।

रात्रिचर्या

१. रात्रि के प्रथम प्रहर के प्रारम्भ होने पर (सूर्यास्त होने पर) अपना दैनिक जीविकोपार्जन का कार्य बन्द कर देना चाहिए तथा उष्णोदक से हाथ-पैर अच्छी तरह धोने चाहिए। उष्णोदक से कुछ देर तक पैरों का प्रसेक करने से श्रमजन्य थकान कुछ कम हो जाती है।

फिर परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बैठकर दिनभर में किये गये कार्यों का निरीक्षण करें तथा आनेवाले कल हेतु क्या करना है इसपर विचार करें।

समस्याओं हेतु मिलकर सबकी राय से सद्विद्विपूर्वक सुदृढ़ निश्चय लेना तथा राय से किया गया निर्णय निश्चय ही सही होता है तथा पारिवारिक जीवन को पैदा नहीं होने देता। साथ ही इससे दिनभर की थकान दूर होकर शान्ति मिलती है।

भोजन के पश्चात् थोड़ी देर टहलना चाहिए। 'भोजनान्ते शतपदं गच्छेत्' के अनुसार थोड़ी देर अवश्य घूमना चाहिए।

इसके बाद एकान्त में अपने दिनभर के कार्य का पुनः सिंहावलोकन करें तथा मन को दिनभर की उपलब्धि के लिए धन्यवाद दें एवं सुखमय जीवन-मार्ग के लिए वन्दना करें। ईश्वर का स्मरण करें।

५. रात्रि के प्रथम प्रहर की समाप्ति से पूर्व सुकोमल शैया पर शयन करें।

शयन से पूर्व जिन ऋतुओं में स्त्री-प्रसंग का निषेध किया है उन ऋतुओं को छोड़कर, ऋतुकाल होने पर बाजीकारक ओषधियों के सेवन के पश्चात् मधुरभाषिणी, मन को प्रिय लगनेवाली, सुगन्धित द्रव्य लेपन किये हुए, आभूषण आदि से शृंगारित, कामकला को जाननेवाली अपनी स्त्री से रमण कर गर्भाधान कर सकते हैं।

ऋतुचर्या

आयुर्वेद-शास्त्रों में सम्पूर्ण वर्ष को छह ऋतुओं में बाँटा गया है। किस ऋतु में कौन-सा दोष कुपित होता है, कौन-सा रोग हो सकता है, क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए आदि का पूरा विवरण मिलता है। इसे ऋतुचर्या कहा गया है। संक्षेप में ऋतुओं का वर्णन इस प्रकार है—

जैसाकि हम जानते हैं कि सूर्यसहित सभी ग्रहों की स्थिति निरन्तर गतिशील है। ये अपने एक ही चक्र में निश्चित मार्ग पर निश्चित समय में निश्चित दूरी पूरी करते हैं, इसी के आधार पर भारतीय ज्योतिष-शास्त्र का निर्माण हुआ है।

आयुर्वेद के अनुसार सूर्य के उत्तर की ओर जाने के समय—उत्तरायण (आदान-काल) को शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म ऋतु कहा है। इसी प्रकार सूर्य के दक्षिण की ओर जाने को दक्षिणायन (विसर्गकाल), जिसमें वर्षा, शरद् व हेमन्त ऋतु आती हैं, कहा है।

आदानकाल का तात्पर्य है “आददाति क्षपयति पृथिव्याः सोमांशं प्राणिनां च बलमिति आदानम्” अर्थात् सूर्य पृथिवी पर रहनेवाले सौम्य रसों का, प्राणियों के रसों और बलों का आदान करता है, लेता है, अर्थात् आदानकाल में सूर्य उत्तरायण होता है। इसे आनेय कहा है। इस काल में सूर्य अपनी तेज किरणों से संसार के जलीय भाग को आचूषित करता है तथा रूक्ष वायु उस जलीय अंश को सुखाता है जो शिशिर, वसन्त व ग्रीष्म ऋतुओं में उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूक्षता को उत्पन्न हुए रूक्षता-प्रधान तिक्त, कषाय व कटु रसों की वृद्धि करता हुआ प्राणियों में दुर्बलता का संचार करता है। शिशिर ऋतु में वनस्पति तथा प्राणि रूक्षता, द्रव्यों में तिक्त रस की उत्पत्ति, अल्प दुर्बलता, वसन्त ऋतु में वन प्राणियों में मध्यम रूक्षता, द्रव्यों में कषाय रस की उत्पत्ति, मध्यम दुर्बलता, ग्रीष्म ऋतु में प्राणियों तथा वनस्पतियों में तीव्र रूक्षता, द्रव्यों में कटु उत्पत्ति एवं तीव्र दुर्बलता होती है।

विसर्गकाल से तात्पर्य “विसृजति क्षपयति आप्यमंशं प्राणिनां च विसर्गकालः। विसर्गकाल में सूर्य दक्षिणायन होता है। इस काल में चन्द्र बलवान् होता है। वायु अधिक रूक्ष नहीं बहता। चन्द्रमा अपनी शीतलता से भूमण्डल को आप्यायित करता है। विसर्गकाल में वर्षा, शरद्, हेमन्त इन ऋतु में जब सूर्य दक्षिणाभिमुख होता है तब मेघवात और वर्षा के कारण आदानकाल

का प्रभाव घट जाता है तथा जब चन्द्रमा पूर्ण शक्ति-सम्पन्न होता है तब वर्षा के जल द्वारा भूमण्डल-स्थित समस्त प्राणियों का सन्ताप हरता है। तब अरुध, अम्ल, लवण तथा मधुर रसों की द्रव्यों में वृद्धि होकर मनुष्यों में बल की वृद्धि होती है।

आयुर्वेद-शास्त्रों के मतानुसार वर्ष के बारह मासों को निम्न प्रकार से छह ऋतुओं में बाँटा है—

माघ और फाल्गुन	शिशिर ऋतु
चैत्र और वैशाख	वसन्त ऋतु
ज्येष्ठ व आपाढ़	ग्रीष्म ऋतु
श्रावण व भादों	वर्षा ऋतु
क्वार व कार्तिक	शरद् ऋतु
अगहन व पौष	हेमन्त ऋतु

आयुर्वेद में समस्त रोगों का कारण वात, पित्त, कफ—त्रिदोष को माना है। इनके संचय, प्रकोप व प्रशम से रोगों का निदान किया जाता है। वातादि दोषों का संचय, प्रकोप व प्रशम ऋतुओं के अनुसार निम्न प्रकार माना है—

दोष	संचयकाल	प्रकोपकाल	प्रशमकाल
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद्
पित्त	वर्षा	शरद्	हेमन्त
कफ	हेमन्त	वसन्त	ग्रीष्म

अतएव इन दोषों के संचय, प्रकोप, प्रशमन को देखते हुए मानव को ऋतु के अनुसार दिनचर्या व रात्रिचर्या का नियमित समय निर्धारित करते हुए अपना कार्य करना चाहिए, जिससे मानव सदैव नीरोग रहकर अपने जीवन को सार्थक कर सके और अपनी पूर्ण दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

अनुसार दिनचर्या व रात्रिचर्या का वर्णन संक्षेप में निम्न है—

ऋतुचर्या

ऋतु में शीतल वायु के स्वाभाविक स्पर्श होने से बल-सम्पन्न पुरुषों की शक्ति रुकी हुई जठराग्नि प्रबल होकर भूख बढ़ाती है। वह जठराग्नि गुरु पदार्थों को भी अधिक मात्रा में पचाती है। हेमन्त ऋतु में स्निग्ध, घी, तेल, नये युक्त अम्ल, लवण, रसयुक्त भोजन, सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में उससे बने पदार्थ, गुड़-तिल आदि से बने पदार्थ, तेल, नये चावलों का भक्षण स्नान आदि में गरम जल का प्रयोग हितकर है, अर्थात् यह कहना उपयुक्त है कि हेमन्त ऋतु आनन्द प्राप्त करने का समय है। सभी प्रकार के भोगों की पूर्ति, उनका उपयोग इस ऋतु में किया जा सकता है। इस ऋतु में तेल मालिश,

स्निग्ध पदार्थों से उबटन, सिर में तेल लगाना, स्वेदन करना, धूप का सेवन, गरम वस्त्रों का धारण करना चाहिए। अगरु का गाढ़ा लेप करना चाहिए। आचार्यों ने हेमन्त ऋतु की चर्या में केवल एक ही श्लोक में बहुत-कुछ कह दिया है यथा — “हसन्ति च हसन्ति च हसन्ति वामलोचनाः। हेमन्ते ये न सेवन्ते ते नूनं देववंचिता” अर्थात् दहकती हुई अँगीठी तथा मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई स्त्री, यदि इनका सेवन हेमन्त ऋतु में भी नहीं किया तो देवताओं ने ही उस स्वस्थ पुरुष को भोगों से वंचित कर दिया।

हेमन्त ऋतु में ठण्डे, वात-वर्धक पदार्थ, शीतल पेय, खुली हवा तथा हल्का खाना, लघु पदार्थ आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

शिशिर ऋतुचर्या

हेमन्त एवं शिशिर ऋतु का प्रभाव प्रायः समान रहता है। इसलिए शिशिर ऋतु में हेमन्त ऋतु के समान ही आहार-विहार रखना चाहिए। तथापि इस ऋतु में शीत की अधिक उग्रता रहती है, इसलिए शीतल वायु से बचना चाहिए। गर्म कपड़े अधिक पहनने चाहिए। घरों को गर्म रखना चाहिए। शिशिर ऋतु में कटु, चरपरे, सौंठ, लालमिर्च, तिक्त तथा कषैले, वातकारक ठण्डे सत्तू आदि का प्रयोग न करें। शेष दिनचर्या, रात्रिचर्या, हेमन्त ऋतु की तरह से ही करनी चाहिए।

वसन्त ऋतुचर्या

हेमन्त ऋतु में संचित कफ वसन्त-काल में सूर्य की किरणों से पिघलकर स्रोतों द्वारा शरीर में फैलकर जठराग्नि को मन्द कर देता है। तदनन्तर वह पाचन आदि कार्यों में मन्द होकर विविध प्रकार के रोगों को पैदा कर देता है। इसलिए वसन्त ऋतु में प्रारम्भ में ही वमन आदि पंचकर्मों के द्वारा शरीरस्थ प्रकुपित कफ निकाल देना चाहिए।

वसन्त ऋतु में व्यायाम करना, उबटन करना, अंजन लगाना, मगुनगुने जल में स्नान करना चाहिए। चन्दन-अगरु आदि सुगन्धित द्रव्यों से स्नान करना चाहिए। पुराने जौ-गेहूँ का सेवन करना चाहिए। कामिनी स्त्री का हितकर है।

वसन्त ऋतु में भारी, गुरु, चिकने पदार्थों का सेवन व दिन में सोना नहीं है। प्रातःकालीन भ्रमण लाभप्रद है तथा कफ को बढ़ानेवाले आहार-विहार बचना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतुचर्या

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों से संसार के द्रव्यों तथा प्राणियों के जल

सारभाग का अत्यधिक शोषण करता है, अतः इस ऋतु में मधुर रस-प्रधान शीतल द्रव्य तथा स्निग्ध अन्नपानों का सेवन करना चाहिए। शीतलचीनी मिला पानी में घोला हुआ सत्तू, घी, दूध तथा शालिचावलों के भात का सेवन करने से ऋतुजन्य विकारों से बचा जा सकता है। इस ऋतु में लवण, अम्ल व कटुरस-प्रधान द्रव्यों का सेवन तथा अधिक व्यायाम न करें। इस ऋतु में शीतलगृह में दिन में, तथा रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणों में खुले स्थान पर शीतल द्रव्यों का लेप कर शयन करें। ग्रीष्म ऋतु में मैथुन का पूर्णरूप से त्याग करें।

ग्रीष्म ऋतु पूर्णतया आदानकाल है, अतः गरम, रुक्ष, पित्त-वर्धक पदार्थों का सेवन न करें।

वर्षा ऋतुचर्या

आदानकाल में स्नेह तथा रस के आचूषित हो जाने के कारण शरीर में स्थित जठराग्नि दुर्बल हो जाती है। वर्षा में तपी हुई भूमि पर वर्षा का जल पड़ने से वाष्प निकलती है। उसके कारण लगातार वर्षा होने से, जल के अम्ल विकासशील होने से, और जठराग्नि के मन्द पड़ जाने से वात आदि दोष कुपित हो जाते हैं। वर्षा में वायु कुपित होकर वह अन्य कफ, पित्त आदि दोषों को भी अपने प्रभाव से दूषित कर देता है, अतः यह वायु कफ, पित्त को लेकर जिस अंग में विचरण करता है वहाँ वेदना, दाह, थकावट व कमजोरी को पैदा कर देता है, अतः वर्षा ऋतु में प्राणियों का स्वास्थ्य अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक अनियमित हो जाता है। वर्षा में भूमि सर्वत्र जलीय हो जाती है, अतः नंगे पैरों न चलें। जूते आदि पहनकर ही चलें। वर्षा का पानी, कीचड़ आदि लगने से पैरों में अलसक (खारुवे) नामक रोग हो जाता जिसमें पैरों की अँगुलियों के बीच सड़न पैदा हो जाती है, खुजली हो जाती है जलाने पर दाह एवं पीड़ा होती है। वर्षा ऋतु में जल में घोले हुए सत्तू, दिन रात्रि में छत पर सोकर ओस का सेवन करना, नदियों का जल, व्यायाम सेवन करना, स्त्री-सहवास आदि का त्याग कर देना चाहिए। वर्षा ऋतु में सभी पदार्थों के साथ मधु का प्रयोग करना चाहिए। जिस दिन कारण अधिक शीत का अनुभव होता है उस दिन शरीरस्थ वायु भी सक्रिय है, अतः प्रकुपित वायु की शान्ति के लिए विशेषतः खट्ते, तथा स्निग्ध पदार्थों का सेवन अधिक नहीं करना चाहिए। पुराने जौ-गेहूँ पार्थों का सेवन हितकारी है।

ऋतुचर्या

वर्षा ऋतु में संचित पित्त शरद् ऋतु के सूर्य की किरणों की ऊष्मा को पाकर ह्सा प्रकुपित हो जाता है, अतः पित्त को शमन करनेवाले अन्नपान, तिक्त द्रव्यों

से सिद्ध घी का पान करें। यदि इनसे भी पित्त का शमन न हो तो पित्त को निकालने के लिए विरेचन का प्रयोग करना चाहिए। इस ऋतु में जठराग्नि अत्यन्त मन्द हो जाती है, अतः पहले किये गये भोजन के पच जाने पर व भूख लगने पर ही पुनः भोजन करना चाहिए। शरद् ऋतु में मधुर, लघु, हल्का, शीतल, तिक्तरस-प्रधान, करेला आदि, जौ, गेहूँ का आहार करना चाहिए। शरद् ऋतु में धूप का सेवन, वसा, तेल, ओस, क्षार दही, दिन में सोना व पूर्वी हवा से बचना चाहिए। इस ऋतु में 'हंसोदक' का सेवन करना चाहिए।

हंसोदक बनाने की विधि

दिन में सूर्य की किरणों से तपा हुआ तथा रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शीतल, दिन व रात के समय के परिपाक से निर्दोष जल को हंसोदक कहा जाता है। वर्षा ऋतु में जल अभिनव रहता है और उसमें पार्थित्व, भारीपन आदि आ जाता है, अतः हंसोदक का सेवन पीने व नहाने आदि के कार्य में करना चाहिए।

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए उपर्युक्त प्रकार से वर्णित दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या का नियम से पालन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त धारणीय वेगों का धारण करना चाहिए व अधारणीय वेगों का परित्याग करके सद्वृत्त (सदाचार) करते हुए दीर्घायु प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

वेग

उचित प्रकार से किया गया आहार-विहार, रसादि सप्त धातुओं का पोषण करता है और उनका शेष अथवा सारहीन भाग, मल-मूत्र से बाहर निकलता है। इनकी प्रवृत्ति जब होती है उस समय एक विशेष प्रकार के वेग (दबाव) की अनुभूति होती है। इसी प्रकार के दबाव कई बार मानसिक उद्वेग के कारण होते हैं कई वेग ऐसे हैं जिनको रोकने से शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अधारणीय वेग कहा जाता है। इसके विपरीत कई वेग ऐसे हैं जिन्हें न शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन्हें धारणीय वेग की संज्ञा दी निम्न प्रकार से है—

अधारणीय वेग

१. मूत्र का वेग—इसे रोकने से मूत्राशय में वेदना, शूल, मूत्रकृच्छ्र, शिथिलता तथा पथरी जैसे रोग हो जाते हैं।
२. पुरीष का वेग—मल का वेग रोकने से पक्वाशय तथा सिर में शूल का अवरोध, आध्यमान, जंघा-पिंडलियों में ऐंठन, अर्श आदि रोग हो जाते हैं।
३. शुक्र का वेग—रोकने से मूत्रेन्द्रिय व वृषणों में दर्द, सूजन, हृदय में वेदन

तथा मूत्र में विवद्धता हो जाती है।

४. अपानवायु का वेग—रोकने से वात, मल, मूत्र आदि का अपने मार्गों से प्रवृत्त न होना, पेट का फूलना, थकावट का प्रतीत होना व अन्य उदर-रोग हो जाते हैं।

५. वमन का वेग—रोकने से खुजली, शरीर में छोटे-छोटे चकत्तों का पड़ जाना, सूजन, पीलिया तथा ज्वर आदि रोग हो जाते हैं।

६. छोंक का वेग—रोकने से गर्दन का अकड़ जाना (मन्यास्तम्भ), शिरःशूल, अर्दित (मुँह का लकवा), अर्धावभेदक आदि रोग हो जाते हैं।

७. उद्गार (डकार) के वेग को रोकने से—हिचकी, खाँसी, कम्प, हृदय का भारीपन, आदि रोग हो जाते हैं।

८. जम्भा (जंभाई) के वेग को—रोकने से विनाम (एक प्रकार की ऐंठन), आक्षेप, कम्पवात तथा स्पर्श का अनुभव न होना आदि रोग हो सकते हैं।

९. क्षुधा (भूख) के वेग—को रोकने से कृशता, वैवर्ण्य, अंगमर्द, अरुचि व भ्रम आदि रोग हो जाते हैं।

१०. प्यास (पिपासा)—का वेग रोकने से गले व मुख का शोष, बहरापन, थकावट, श्वास एवं मूर्च्छा आदि रोग हो जाते हैं।

११. वाष्प (आँसू) का वेग—रोकने से जुकाम, नेत्र-सम्बन्धी रोग, हृदय-विकार, व अरुचि हो जाती है।

१२. निद्रा का वेग—रोकने से जंभाई, अंगमर्द, तन्द्रा, कफ तथा शिरो-रोग हो जाते हैं।

१३. श्रमज निःश्वास का वेग—रोकने से मूर्च्छा, गुल्म व हृदय रोग हो जाते हैं। वेगों को रोकना नहीं चाहिए। इन्हें रोकने (धारण करने) से कई प्रकार की रोगें हो जाती हैं।

प्रकार अधारणीय वेगों को रोकना नहीं चाहिए, उसी प्रकार धारणीय वेगों को धारण करना चाहिए, जिससे मानसिक व शारीरिक कल मिलता है, ये निम्न हैं—

धारणीय वेग

१. कित से अधिक साहस का प्रदर्शन या कार्य करना।

२. अधिक बोलना व मिथ्या बोलना।

३. शुभ तथा अभद्र बोलना।

४. अप्रिय भाषण।

५. अशुभ चिन्तन तथा अशुभ कार्य करना।

६. लोभ करना।

७. क्रोध करना ।
८. भय का धारण करना ।
९. शोक का धारण करना ।
१०. परस्त्री-गमन करना ।

सद्वृत्त अर्थात् सदाचार

सद्वृत्त अर्थात् सज्जनों का आचरण अथवा शुभ आचरण । शान्ति, शीघ्र, सत्-आचार के योग से उत्पन्न जो धर्म उसके प्रभाव से धर्म, अर्थ, काम (इस त्रिवर्ग) को निरापद करके जो निर्वाह करते हैं उन्हें सज्जन कहते हैं । उनके आचरण का सेवन करता हुआ मानव एक-साथ दो लाभों को प्राप्त करता है—१. आरोग्य लाभ, २. अपनी इन्द्रियों पर विजय । वे सद्वृत्त निम्न प्रकार से हैं—

१. देवता, गाय, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध (ज्ञानवृद्ध/वयोवृद्ध), सिद्ध, तपस्वी और आचार्य, माता, पिता और अग्रज—इनकी सेवा करें, इनकी आज्ञा का पालन करें ।
२. प्रशंसनीय, अनुभूत अथवा जिन्हें धारण करने से विशेष प्रभाव होता है ऐसी ओषधियों को धारण करें ।

३. दोनों समय ईश्वर की आराधना करें ।

४. मलायनों अर्थात् आँख, कान, नाक, मुख, रोमकूप, गुदा तथा मूत्रमार्ग एवं पैरों को सदा स्वच्छ रखें ।

५. प्रत्येक पक्ष में तीन बार केश, श्मश्रु, लोम तथा नखों को कटवाता रहे ।

६. शिर, कान, नाक व पैरों के तलुओं में प्रतिदिन तेल डालें तथा लगाएँ ।

७. दूसरा पहले बोले उसके बाद मैं बोलूंगा—ऐसी इच्छा का त्याग कर स्वयं पहले बोलने का अभ्यास करें ।

८. विपत्ति में पड़े हुए की रक्षा करें ।

९. सभी प्राणियों को बन्धु के समान समझें ।

१०. राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि मानसिक विकारों से दूर रहें ।

११. सदा सत्य बोलें ।

१२. पराये धन को लेने की इच्छा न करें ।

१३. परस्त्री को माता और बहन के समान मानें ।

१४. दूसरे के दोषों को न देखें । अपने अवगुणों को सतत ध्यान में रखें उन्हें दूर करने का प्रयास करें ।

१५. दूसरे की गुप्त बातों को सुनने का प्रयास न करें । न ही किसी गुप्त भेद कहें ।

१६. अधार्मिक, राज्य-द्वेषी, पागल, पतित, छोटे स्वभाववाले व दुष्ट प्रवाले व्यक्ति के पास न बैठें ।

१७. दावाग्नि से आक्रान्त स्थान के चारों ओर न धूमें।
 १८. बहुत जोर से न हँसैं।
 १९. बिना मुँह ढके हुए छींक, खांसी, जंभाई न लें और हँसी को प्रारम्भ न करें।

२०. नाक व कान को अँगुली या सीक आदि से न कुरेदें।
 २१. दाँतों को न किटकटायें, परस्पर अस्थि-प्रधान अंगों को न रगड़ें। न भूमि को अँगुली से खोदें और न ही आँख, मुख आदि से अनुचित चेष्टाएँ करें।
 २२. तेज चमकनेवाली ज्योति को न देखें और न ही अनिष्टकारक, अपवित्र तथा अशुभ वस्तुओं को देखें।
 २३. शव को देखकर अपमान, तिरस्कार या घृणा-सूचक हुंकार न करें।
 २४. रात्रि में चैत्य स्थान, चौराहा, उपवन, श्मशान और वधस्थान पर न जाएँ।

२५. किसी खाली घर में तथा वन में अकेले न जाएँ।
 २६. महान् पुरुषों का विरोध न करें। न ही नीच पुरुष की सेवा करें।
 २७. थकावट दूर करने से पूर्व, बिना मुख धोये एवं नंगे होकर स्नान न करें।
 २८. पूज्य व्यक्तियों तथा मंगलकारी द्रव्यों को बाईं ओर करके और अपूज्य तथा अमंगलकारी द्रव्यों को दाईं ओर करके कोई यात्रा न करें।
 २९. बिना हाथ धोये, बिना ईश्वर को याद किये, माता-पिता, गुरु, अतिथि तथा परिवार के अन्य आश्रित जनों व नौकरों को भोजन कराये बिना, विश्वस्त व्यक्ति के लाये बिना, अनुचित स्थान में, अशुद्ध वर्तनों में लाया हुआ, असमय में और निकूल व्यक्ति द्वारा दिये गये भोजन का सेवन न करें।

३०. न टेढ़ा होकर छींकें, न भोजन करें, न सोएँ। मल-मूत्र का वेग होने पर कार्य को भी छोड़कर मल-मूत्र का त्याग करें। वायु, अग्नि, जल, चन्द्र, ग व गुरुजनों की ओर न थूकें। जहाँ अनेक लोग रहते हों, अथवा खड़े के समय जप, होम व अध्ययन तथा मांगलिक कार्यों के बीच थूकना या रना निषिद्ध है।

नी का अपमान न करें। न ही उनका अधिक विश्वास करें, न ही उन्हें बताएँ।

रजस्वला, रुग्णा, अपवित्र, अरुचिकर, अप्रियरूप, अनिष्ट आचरण से कला में अकुशल, विपरीत आचरणवाली, मैथुन की इच्छा न रखनेवाली, को छोड़कर अन्य पुरुष को चाहनेवाली दूसरे की स्त्री, स्त्री-योनि को अन्य योनि में तथा ग्राम अथवा नगर का महान् वृक्ष, आँगन, चौराहा, श्मशान, वधस्थान, जलाशय, औषधालय, गुरु के घर, देव-मन्दिर में, अथवा सन्ध्याकाल में, अतिथि में, अपवित्र स्थिति में, बाजीकरण ओपधि

सेवन के बिना, बिना भोजन किये, मल-मूत्र का वेग होने पर, थकावट होने पर, व्यायाम, उपवास तथा बलगम से पीड़ित होने पर, बिना एकान्त के प्राप्त हुए मैथुन न करें।

३३. सज्जन पुरुषों तथा गुरुजनों की निन्दा न करें और अपवित्र स्थिति में रहकर अभिचार कर्म न करें।

३४. आकाश में बिजलियों के चमकने पर, चारों दिशाओं में आग लगने पर, आस-पास में आग लग जाने पर, भूकम्प होने पर, बड़े-बड़े उत्सव होने पर, उल्का-पात होने पर, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण होने पर, अमवास्या के दिन प्रातः-सायं, मन्थ्या के समय, गुरुमुख से उपदेश प्राप्त किये बिना अध्ययन न करें।

३५. बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मति से बनाये गये नियमों का त्याग न करें।

३६. शास्त्र एवं लोकमर्यादा के नियमों का पालन करें।

३७. रात्रि में न धूमें तथा अपरिचित स्थान में विहार न करें।

३८. सन्ध्याकाल में भोजन, अध्ययन, स्त्री-सहवास एवं शयन न करें।

३९. बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, क्लेशयुक्त जीवनयापन करनेवालों तथा नपुंसकों के साथ मित्रता न करें।

४०. मद्यपान, जूआ खेलने व वेश्यागमन की इच्छा न करें।

४१. किसी का अपमान न करें। अभिमान न करें। स्वाभिमान की रक्षा करें।

४२. कार्यकुशल और उदार बनने का सतत प्रयत्न करें।

४३. वृद्ध, गुरुजन व जनसमूह और राजा, इनके प्रति कोई आक्षेप न करें।

४४. बान्धव, प्रेमीजन, आपत्तिकाल में सहायक तथा गुप्त बातें जाननेवाले व्यक्तियों को अपने सम्पर्क से अलग न करें।

४५. जिस कार्य के लिए जो समय निश्चित है उसका अतिक्रमण जिसके सम्बन्ध में ठीक जानकारी न हो ऐसे कार्य के प्रति मनोयोग न रखें।

४६. इन्द्रियों के वश में न रहें अपितु इनको अपने वश में रखें चंचल न होने दें।

४७. कार्य की सफलता में अधिक प्रसन्न, और कार्य की विफल दुःखी न हों।

४८. ब्रह्मचर्य, ज्ञान, मित्रता, दयालुता, हर्ष, उपेक्षा और शान्ति, रहें।

४९. बड़े व विद्वान् व्यक्ति से सम्पर्क बढ़ाने का प्रयास करते रहें।

इस प्रकार उपर्युक्त सद्वृत्त का पालन करनेवाला व्यक्ति सत्पुरुष व होता है तथा जगत् में सुयश प्राप्त करता है।



हमारे प्रकाशन

धर्म अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी

सरस्वती की

सरल सुबोध आध्यात्मिक

पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२.००
एक ही रास्ता	१२.००
शंकर और दयानन्द	८.००
मानव जीवन-गाथा	१२.००
सत्यनारायण व्रत कथा	५.००
भक्त और भगवान	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१६.००
घोर घने जंगल में	२०.००
मानव और मानवता	३०.००
प्रभु मिलन की राह	२०.००
धन किसका है ?	२०.००

गाएँ

इना किस तरह

१२.००
१२.००
८.००
१२.००
५.००
१२.००
१६.००
२०.००
३०.००
२०.००
२०.००
१६.००
१५.००
१५.००
२०.००
१५.००
१०.००
१२.००
६.००

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)

(ले० रणवीर)

१०.००

महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)

(ले० सुनील शर्मा)

२५.००

परिव्राजक स्वामी जगदोश्वरानन्द

सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)

६००.००

वाल्मीकि रामायण

१५०.००

पङ्कदर्शनम्

प्रेस में

चाणक्यनीति दर्पण

प्रेस में

प्रार्थना लोक

२५.००

ब्रह्मचर्य गौरव

८.००

विद्यार्थियों की दिनचर्या

८.००

दिव्य दयानन्द

८.००

कुछ करो कुछ बनो

प्रेस में

आदर्श परिवार

१५.००

वैदिक उदात्त भावनाएँ

१२.००

वेद सौरभ

१२.००

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित

२५.००

वैदिक विवाह पद्धति

८.००

ऋग्वेद सूक्तिसुधा

२५.००

यजुर्वेद सूक्ति सुधा

१२.००

अथर्ववेद सूक्ति सुधा

१५.००

सामवेद सूक्ति सुधा

१२.००

ऋग्वेद शतकम्

८.००

यजुर्वेद शतकम्

८.००

सामवेद शतकम्

८.००

अथर्ववेद शतकम्

८.००

भक्ति संगीत शतकम्

६.००

चमत्कारी ओपधियाँ

१२.००

घरेलू ओपधियाँ

१२.००

चतुर्वेद शतकम्

५०.००

अंग्रेजी पुस्तकें

Gayatri

Discourses 30.00

Only Way

30.00

पंचमहायज्ञविधि	३.००
व्यवहार भानु	४.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० रासनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि	६०.००
-----------------	-------

आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल	५०.००
---------------------------	-------

डॉ० भवानीलाल भारतीय

श्यामजी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज-विषयक साहित्य	२५.००

क्षितिश वेदालंकार

चयनिका	१२५.००
--------	--------

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

सृष्टिविज्ञान और विकासवाद	४०.००
वेद-मीमांसा	५०.००

स्वामी श्रद्धानन्द

कल्याण मार्ग का पथिक	६०.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खंड)	६६०.००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खंड)	२४०.००
महात्मा हंसराज जीवनी	६०.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत नूतनमुद्रा	४०.००
--------------------	-------

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	१०.००
वैदिक धर्म	२५.००

Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India	Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India	Two Volumes 600.00
Geometry in Ancient India	350.00

God and His Divine Love	5.00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	700.00

Speeches, Writings & Addresses Vol. I	150.00
Vincitveritas	150.00

Speeches, Writings & Addresses Vol. II	150.00
Arya Samaj : A Renaissance	150.00

Speeches, Writings & Addresses Vol. III	150.00
Dayanand : A Philosopher	150.00

Speeches, Writings & Addresses Vol. IV	150.00
Three Life Hazards	

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप	
सहेलियों की वार्ता	

ओम्प्रकाश त्र्यम्बक

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	
-------------------------------	--

प्रो० नित्यानन्द पण्डित

पूर्व और पश्चिम संघ्या विनय	
--------------------------------	--

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	१
---	---

प्रो० रामविचार एम० ए०

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो	४.००	महर्षि दयानन्द	३.००
		स्वामी श्रद्धानन्द	३.००
म० नारायण स्वामी		गुरु विरजानन्द	४.००
प्राणायाम विधि	२.००	धर्मवीर पं० लेखराम	३.००
		मुनिवर पं० गुरुदत्त	३.००
कवि कस्तूरचन्द		स्वामी दर्शनानन्द	३.००
ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००		

कर्मकांड की पुस्तकें

घर का वैद्य		आर्य सत्संग गुटका	३.००
लेखक : सुनील शर्मा		पंचयज्ञ प्रकाशिका	८.००
घर का वैद्य प्याज	६.००	वैदिक संध्या	०.७५
" लहसुन	६.००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८.००
" गन्ना	६.००	सत्संग मंजरी	६.००
" नीम	६.००	Vedic Prayer	3.00
" सिरस	६.००		
" तुलसी	६.००		
" आंवला	६.००		
" तीव्र	६.००		
" पीपल	६.००		
" आक	६.००		
" गाजर	६.००		
" मूली	६.००		
" अदरक	६.००		

आचार्य उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल १०.००

विद्यामार्तण्ड पं० विश्वनाथ

विद्यालंकार

संध्या रहस्य २५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

हल्दी	६.००	शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड)	१८००.००
रगद	६.००	जीवात्मा	७५.००
अ-धी	६.००	सन्ध्या क्या क्यों कैसे	१०.००
मो-मट्ठा	६.००		
ना	६.००		
नमक	६.००		

बाल साहित्य

बेल	६.००	बालशिक्षा (ले० स्वामी दर्शनानन्द)	२.५०
गहद	६.००	वैदिक शिष्टाचार	२.५०
फिटकरी	६.००		
साग-भाजी	६.००		
अनाज	६.००		

प्रशान्त बेदालंकार

वैद्य ५ जिल्दों में	२२५.००	धर्म का स्वरूप	५०.००
---------------------	--------	----------------	-------

शिवकुमार शास्त्री

श्रुति सौरभ

६०.००

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

सुखी जीवन	१८.००
सुखी गृहस्थ	१२.५०
सुखी परिवार	१८.००
आचार शिक्षा	१०.००
नीति शिक्षा	१०.००
वेदों में नारी	१५.००
सुखी समाज	१८.००
वैदिक मनोविज्ञान	१८.००
यजुर्वेद सुभाषितावली	१५.००
सामवेद सुभाषितावली	१५.००
अथर्ववेद सुभाषितावली	२५.००
ऋग्वेद सुभाषितावली	३०.३०

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

भूमिका भास्कर—I-II	३००.००
तत्त्वमसि	५०.००
सत्यार्थ भास्कर I भाग	४००.००
आर्यों का आदिदेश	
और उनकी सभ्यता	६०.००

आचार्य अभयदेव

कैलिक विनय	१००.००
की गौ	४०.००
य	४०.००
	४०.००

द्यासागर अवरोल

२५.००

काश वेदालंकार

२२.५०

२.५०

मुनि वानप्रस्थ

गण विधि	८०.००
---------	-------

पं० भगवद्दत्त

देवता	३५.००
देवता	४०.००

पं० सत्यकेतु विद्यालंकार कृत

आर्यसमाज का इतिहास	
(प्रथम भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(दूसरा भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(तृतीय भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(चतुर्थ भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(पाँचवाँ भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(छठा भाग)	१६५.००
आर्यसमाज का इतिहास	
(सातवाँ भाग)	१६५.००
प्राचीन भारतीय इतिहास का	
वैदिक युग	६२.००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया	
में भारतीय संस्कृति	८०.००
पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया का	
आधुनिक इतिहास	६६.००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय	
संस्कृति	२२.००
प्राचीन भारत	७७.००
भारतीय संस्कृति का विकास	५५.००
प्राचीन भारत का धार्मिक	
सामाजिक और आर्थिक जीवन	८०.००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ	
और राजनीतिक विचार	६२.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	१००.००
यूरोप का इतिहास	१२०.००
समाजशास्त्र	६६.००
चाणक्य	४४.००
पतन और उत्थान	३५.००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	६०.००
राजनीति शास्त्र	८०.००
नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त	१६.००
भारत का इतिहास	४२.००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५.००
मध्यकालीन भारत	५८.००

धर्मजीत जिज्ञासु

जीवन गीत

१२.००

विद्याभास्कर, वेदरत्न, न्याय-वैशेषिक सांख्य-योग्य तीर्थ,
वेदान्ताचार्य, शास्त्रशेवधि

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

(पृष्ठ संख्या ७००० के लगभग, डिमाई आकार में)

ग्रन्थावली में सम्मिलित ग्यारह ग्रन्थ

१. न्याय दर्शन भाष्य	१५०-००
२. वैशेषिक दर्शन भाष्य	१२५-००
३. सांख्य दर्शन भाष्य	१००-००
४. योग दर्शन भाष्य	१००-००
५. वेदान्त दर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६. मीमांसा दर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७. सांख्य दर्शन का इतिहास	२५०-००
८. सांख्य सिद्धान्त	२००-
९. वेदान्त दर्शन का इतिहास	२०
१०. प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	
११. वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	

सम्पूर्ण ग्रन्थावली के ग्यारह खण्डों का मूल्य २०००.००

यह अमूल्य ग्रन्थावली बहुत बढ़िया कागज पर, ^{Yoni—1} कपड़े की जिल्द में नयनाभिराम भी है।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा
वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।